खण्ड 2
नाटक : वस्तु, नेता और रस

खण्ड 2 का परिचय

बी.ए. सामान्य संस्कृत तृतीय वर्ष के रंगमंच और नाट्यकला नामक पाठ्यक्रम में आपका स्वागत है। यह पाठ्यक्रम कुल तीन खण्डों में विभाजित हैं। खण्ड 02 का नाम नाटक : वस्तु, नेता और रस है। इस खण्ड में कुल सात इकाइयॉ हैं। जिनका अध्ययन आप नाटक के निर्माण प्रयुक्त किये जाने वाले तीन मुख्य तत्वों की जानकारी के लिए करेंगें। जिनमें प्रथम इकाई विभिन्न आचायों के अनुसार नाट्य की परिभाषा तथा भेद की है। जिसमें भरत के अनुसार, दशरूपक के अनुसार, विश्वनाथ तथा अन्य आचार्यों के अनुसार नाटक के स्वरूप की चर्चा करते हुए दस प्रकार के नाटकों का वर्णन आपके अध्ययन के लिए प्रस्तुत किया गया है। दूसरी इकाई में अभिनय तथा वस्तु का वर्णन करते हुए अभिनय की परिभाषा के साथ–साथ कथावस्तु के भेदों का उल्लेख किया गया है। तीसरी इकाई में अर्थप्रकृतियों तथा अन्य नाट्य तत्वों का वर्णन है। इनमें कार्यावस्थाएं तथा नाटक में प्रयुक्त की जाने वाली सन्धियॉ भी हैं। चौथी इकाई में नाट्य संवाद के प्रकारों का वर्णन किया गया है जिनमें आप : सर्वश्राव्य या प्रकाश ,अश्राव्य या स्वगत, अनियतश्राव्य, जनान्तिक, अपवारित, आकाशभाषित आदि का अध्ययन करेंगें। पॉचवीं इकाई नायक और नायिका भेदों से सम्बन्धित है जिसके अन्तर्गत आप नायक की परिभाषा तथा भेद सहित अन्य तथ्यों का भी अध्ययन करेंगें। छठी इकाई में रस तथा भाव के वर्णन में आप रस की परिभाषा, रस की उत्पति के उपादान, विभाव, अनुभाव, सात्विक भाव, स्थाई भाव, का अध्ययन करेंगें। सातवीं और अंतिम इकाई व्यभिचारी भाव तथा मानसिक स्तर के चार प्रकारों के वर्णन की है। इसमें आप इन भावों के लक्षण तथा भेद के साथ–साथ विकास, विस्तार, क्षोभ, विक्षेप आदि के बारे में जानकारी प्राप्त करते हुए इस खण्ड में सम्पूर्ण वर्णन से सम्बद्ध तथ्यों को समझा सकेंगें।

इकाई 6 विभिन्न आचार्यों के अनुसार नाट्य की परिभाषा तथा भेद

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 विभिन्न आचार्यों के अनुसार नाट्य की परिभाषा तथा भेद

6.3 सारांश

6.4 शब्दावली

6.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

6.6 बोध प्रश्न

6.0 उद्देश्य

नाट्य की परिभाषा तथा भेद से सम्बन्धित इस इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप :

- भरतमुनि के अनुसार नाट्य का लक्षण जान सकेंगे।
- दशरूपक के नाट्य लक्षण का अध्ययन करेंगे।
- विश्वनाथ व अन्य आचार्यों के नाट्य लक्षणों को समझ सकेंगे।
- नाट्य के भेदों के स्वरूपों से परिचित हो सकेंगे।
- उपरूपकों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

संस्कृत वाङ्मय का आरम्भ वेदों से माना जाता है। वे विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। उनमें बाद की सभी ज्ञान–विज्ञान की धाराओं के बीज विद्यमान हैं। नाट्य के बीज भी वेदों में मिलते हैं। भरतमुनि नाट्य की रचना के प्रसंग में स्वयं इसे स्वीकार करते हैं कि उन्होंने ऋग्वेद से पाठ्य अर्थात् संवाद लिये हैं, यजुर्वेद से अभिनय, सामवेद से गीत और अथर्ववेद से रस। इस प्रकार उन्होंने नाट्य का स्रोत उन्होंने वेदों को माना है। स्वयं भरत मुनि ने नाट्य का सैद्धान्तिक विवेचन करने के लिए नाट्यशास्त्र की रचना की और उसमें विस्तार से नाट्य के सभी तत्त्वों का पर्याप्त विवेचन भी किया है। उन्होंने नाट्य का लक्षण और उसके भेदों के भी स्वरूपों को निरूपित किया है। भरतमुनि के पश्चात् नाट्यशास्त्रियों की विशाल परम्परा है। इस परंपरा में धनंजय, विश्वनाथ आदि आचार्य आते हैं। उन्होंने नाट्य की परिभाषा और उसके भेदों पर प्रकाश डाला है। नाट्य के दस भेदों में नाटक, प्रकरण, अंक, व्यायोग, भाण, समवकार, वीथी, प्रहसन, डिम और ईहामृग हैं। इनके अतिरिक्त नाटिका आदि उपरूपक भी हैं।

उपर्युक्त नाट्य के लक्षणों, नाट्य के भेदों और उपरूपक के भेदों को आपके अध्ययन के लिए इस इकाई में प्रस्तुत किया जा रहा है।

6.2 विभिन्न आचार्यों के अनुसार नाट्य की परिभाषा तथा भेद

काव्य की सभी विधाओं में से नाट्य प्राचीन काल से ही अत्यन्त लोकप्रिय विधा रही है। नाट्य का शास्त्रीय लक्षण करने वाला प्राचीनतम ग्रन्थ नाट्यशास्त्र है। इसमें नाट्य का विस्तार से विवेचन किया गया है। पूर्वकाल में समाज में कई बुराइयाँ आ गयी थीं। उन बुराइयों से छुटकारा पाने के लिए ऐसे ज्ञानयुक्त प्रकल्प की आवश्यकता थी जो समाज को सही दिशा दे सके। साथ ही सभी वर्णों के लिए भी उपयुक्त हो। तब भरत मुनि ने चारों वेदों से सामग्री लेकर नाट्यवेद की रचना की। यह नाट्यवेद चारों वेदों से गृहीत होने के कारण वेदों का अनुगामी था और सभी वर्णों के लिए भी ग्राह्य था।

भरतमुनि के पाश्चात् अनेक आचार्यों ने नाट्य लक्षण किये हैं। उन्होंने भरतमुनि का ही अनुसरण किया है किन्तु उनके निरूपण में कुछ नवीनता अवश्य आ गयी है। अब आपके अध्ययन के लिए प्रमुख आचार्यों के नाट्यलक्षणों को प्रस्तुत किया जा रहा है। सर्वप्रथम भरतमुनि के नाट्यलक्षण का अध्ययन कीजिए।

6.2.1 भरतमुनि के अनुसार नाट्य की परिभाषा– भरतमुनि नाट्य के शास्त्रीय विधान करने वाले आचार्यों में सबसे प्राचीन और सबसे प्रामाणिक माने जाते हैं। उन्होंने नाट्य के प्रायः सभी अंगों का विस्तार से विवेचन करने वाले ग्रन्थ नाट्यशास्त्र की रचना की है। नाट्य की परिभाषा अथवा लक्षण करते हुए वे कहते हैं कि लोक (संसार) का स्वभाव सुख और दुःख से समन्वित है। यह स्वभाव जब रंगमंच पर अभिनेताओं द्वारा अभिनीत होता है तो वह नाट्य की संज्ञा पाता है। इस हेतु अभिनेता चार प्रकार के अभिनय का आश्रय लेते हैं। अभिनय के वे चार प्रकार हैं– आंगिक, वाचिक, सात्त्विक और आहार्य। जैसा कि नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में द्रष्टव्य है–

योऽयं स्वभावो लोकस्य सुखदुःख समन्वितः।
सोऽङ्गाद्यभिनयोपेतो नाट्यमित्यभिधीयते।।

इस नाट्य में केवल दानवों या केवल देवों का ही वर्णन नहीं होता है अपितु इसमें तो तीनों लोकों के भावों का अभिनय द्वारा प्रस्तुतिकरण होता है। इस नाट्य में कहीं धर्म है तो कहीं क्रीड़ा, कहीं अर्थ, कहीं श्रम, कहीं हास्य, कहीं युद्ध, कहीं काम और कहीं वध का चित्रण दृष्टिगोचर होता है। धर्मपरायण जनों के लिए इसमें धर्म विद्यमान है, काम में प्रवृत्ति रखने वाले लोगों के लिए काम, उद्दण्ड लोगों के लिए दण्ड की, मदमत्त लोगों के दमन की व्यवस्था भी हैं। यह नपुंसकों अथवा कायरों में धृष्टता का, वीर जनों में उत्साह का संचार करने वाला है। यह अज्ञानियों को ज्ञान प्रदान करने वाला है साथ ही विद्वानों के ज्ञान को बढ़ाने वाला है। ऐश्वर्यसम्पन्न जनों के लिए विलास, दुःख से पीड़ित लोगों के लिए स्थिरता धन का उपार्जन करने वाले लोगों के लिए अर्थ तथा उद्विग्न मन वाले लोगों के लिए यह नाट्य धैर्य प्रदान करता है। यह नाट्य अनेक प्रकार के भावों से युक्त, विभिन्न अवस्थाओं वाला तथा लोक के व्यवहार का अनुकरण करने वाला है। स्वयं भरतमुनि के शब्दों में उपर्युक्त विषयवस्तु द्रष्टव्य है–

नैकान्ततोऽत्र भवतां देवानां चानुभावनम्।
त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम्।।

क्वचिद्धर्मः क्वचित्क्रीडा क्वचिदर्थः क्वचिच्छ्रमः।
क्वचिद्धास्यं क्वचिद्युद्धं क्वचित्कामः क्वचिद्वधः।।
धर्मो धर्मप्रवृत्तानां कामः कामोपसेविनाम्।
निग्रहो दुर्विनीतानां मत्तानां दमनक्रिया।।
क्लीबानां धार्ष्ट्यजननमुत्साहः शूरमानिनाम्।
अबुधानां विबोधष्च वैदुष्यं विदुषामपि।।
ईश्वराणां विलासश्च स्थैर्यं दुःखार्दितस्य च।
अर्थोपजीविनामर्थो धृतिरुद्विग्नचेतसाम्।।
नानाभावोपसम्पन्नं नानावस्थान्तरात्मकम्।
लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम्।।

साथ ही वे कहते हैं कि ऐसा कोई ज्ञान नहीं है, ऐसी कोई विद्या नहीं है, ऐसी कोई कला नहीं है, ऐसा कोई योग नहीं है और ऐसा कोई कर्म नहीं है जो नाट्य में दिखाई न देता हो। नाट्यशास्त्र का निम्नलिखित वचन द्रष्टव्य है–

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृष्यते।।

अर्थात् नाट्य में लोक में होने वाले सभी क्रिया कलापों को देखा जा सकता है। इससे नाट्य में वर्णित विषय–वस्तु की व्यापकता भी प्रकट होती है।

6.2.2 धनंजय के अनुसार नाट्य की परिभाषा

नाट्यशास्त्र के आचार्यों में दसवीं शताब्दी में जन्मे धनंजय का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। इनका ग्रन्थ दशरूपक नाट्य केशास्त्रीय विषयों का सरल रूप में प्रस्तुतिकरण करता है। इनके ग्रन्थ पर धनिक की अवलोक टीका भी अध्येताओं में अत्यन्त लोकप्रिय है। धनंजय ने दशरूपक के प्रथम प्रकाश में नाट्य का लक्षण करते हुए कहा है कि कथा के नायक आदि की अवस्थाओं का अभिनेताओं द्वारा आंगिक, वाचिक, सात्त्विक तथा आहार्य – इन चार प्रकार के अभिनयों द्वारा अनुकरण किया जाना ही नाट्य कहलाता है। धनंजय के शब्दों में–

'अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्'।

साथ ही यह नाट्य रूप भी कहलाता है क्योंकि इसका रंगमंच पर अभिनय होता है इस कारण यह दृश्य भी होता है अर्थात् मंच पर देखा जाता है। धनंजय कहते हैं–

'रूपं दृष्यतयोच्यते।'

यह नाट्य एक अन्य नाम रूपक से भी जाना जाता है क्योंकि इसमें अभिनेता पर राम–सीता आदि अनुकार्य के स्वरूप को आरोपित कर दिया जाता है। इसी को निरूपित करते हुए धनंजय कहते हैं कि – 'रूपकं तत्समारोपात्'।

6.2.3 विश्वनाथ के अनुसार नाट्य की परिभाषा

विश्वनाथ के अनुसार काव्य के प्रथमतः दो भेद होते हैं– श्रव्य और दृश्य। इनमें से जो अभिनय के योग्य होता है वह दृश्य होता है। यही दृश्य नाट्य या रूपक कहलाता है। इसकी परिभाषा करते हुए विश्वनाथ लिखते हैं–

'दृष्यं तत्राभिनेयम्, तद् रूपारोपात्तु रूपकम्'

अर्थात् अभिनय करने वाले नट पर राम आदि के स्वरूप को आरोपित किया जाता है, इस कारण वह दृश्य काव्य रूपक कहलाता है। अभिनेता या नट चार प्रकार के अभिनय द्वारा राम–सीता आदि की अवस्था का अनुकरण करते हैं।

नाट्य की परिभाषा या लक्षण या स्वरूप को जानने के बाद अब हम नाट्य के भेदों या प्रकारों को जानेंगे।

6.3 नाट्य के भेद

आचार्य धनंजय का मानना है कि नाट्य के नाटक आदि दस भेद हो जाते हैं और इन भेदों का आधार बनते हैं– वस्तु, नेता और रस। इनमें कुछ भेद होने पर नाट्य के दस प्रकार हो जाते हैं। ये दस भेद हैं– नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अंक, वीथी और प्रहसन। द्रष्टव्य है–

'नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसमवकारडिमाः।
ईहामृगाङ्कवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश।।

इन भेदों को अब पढ़ते हैं। सर्वप्रथम सबसे प्रमुख और प्रसिद्ध भेद नाटक के बारे में जानते हैं।

6.3.1 नाटक

नाटक की कथावस्तु प्रसिद्ध होती है। यह नाटक मुख आदि पाँच संधियों, अनेक विभूतियों से युक्त होता है। यह सुख–दुःख की उत्पत्ति वाला होता है और इसमें निरंतर रसों की प्रतीति होती रहती है। इसमें अंकों की संख्या पाँच से लेकर दस तक हो सकती है।इसका नायक प्रख्याता वंश में उत्पन्न हुआ कोई राजर्षि जैसे दुष्यन्त आदि होता है जो धीरोदात्त कोटि का नायक होता है और प्रतापी होता है। इसमें नायक दिव्य या दिव्य–अदिव्य जैसे– राम आदि, होता है। नायक का गुणवान् होना भी आवश्यक माना गया है। नाटक में मुख्य रस एक ही हो सकता है, वह शृंगार हो या फिर वीर हो सकता है। शेष सभी रस अंग रूप में अर्थात् अमुख्य रूपा में रह सकते हैं। यह ध्यान देने योग्य है कि अंत में निर्वहण संधि में अद्भुत रस होना चाहिए। नाटक में चार या पाँच पात्र ही मुख्य रूप से कार्य में संलग्न रहते हैं। गाय की पूँछ के अग्र भाग के समान कथा का अंकों में निबन्धन करना चाहिए। नाटक का उदाहरण– महाकवि कालिदास का अभिज्ञानशाकुन्तलम्।

6.3.2 प्रकरण

प्रकरण में कथानक लौकिक और कवि की कल्पना पर आश्रित होता है। इसमें मुख्य रस शृंगार होता है। इसका नायक विप्र या मन्त्री या वणिक् होता है। यह नायक समस्याओं से घिरा हुआ रहता है साथ ही धर्म, अर्थ और काम में तत्पर होता है। यह नायक धीरप्रशान्त कोटि का नायक होता है। इसकी नायिका कहीं कुलजा अर्थात् अच्छे कुल में जन्म लेने वाली स्त्री, कहीं वेश्या और कहीं दोनों अर्थात् कुलीन और वेश्या नायिकाएँ होती हैं। प्रकरण का उदाहरण– महाकवि शूद्रक का मृच्छकटिकम्।

6.3.3 भाण

नाट्य के इस भेद में धूर्त का चरित वर्णित होता है। यह कई अवस्थाओं से समन्वित होता है। इसमें अंक की संख्या केवल एक ही होती है। एक निपुण पंडित विट रंगमंच पर अपने द्वारा अनुभूत या दूसरे के द्वारा अनुभूत विषय वृत्त को प्रकाशित करता है। अकेला ही वह आकाशभाषित उक्तियों के द्वारा संबोधन में उक्ति और प्रत्युक्तियाँ करता रहता है। वह शौर्य और सौभाग्य का वर्णन करके वीर और श्रृंगार रस की सूचना करता है। इसमें कथावस्तु कवि की कल्पना से जनित होती है। वृत्ति प्रायः भारती होती है किन्तु कहीं कैशिकी भी होती है। इसमें पंच संधियों में से मुख और निर्वहण संधि होती हैं तथा लास्य के गेयपद आदि दसों अंग होते हैं। भाण का उदाहरण– लीलामधुकर भाण।

6.3.4 व्यायोग

यह प्रसिद्ध कथानक वाला होता है। इसमें स्त्री पात्रों की संख्या बहुत कम होती है जबकि पुरुष पात्र अधिक होते हैं। नाट्य के इस भेद में गर्भ और विमर्श संधियाँ नहीं होती हैं। इसमें अंकों की संख्या केवल एक होती है। इसमें युद्ध का आरंभ स्त्री के कारण नहीं होता है। इसमें कैशिकी वृत्ति का अभाव रहता है। नायक प्रख्यात राजर्षि या दिव्य कोटि का या धीरोद्धत होता है। इसमें हास्य, श्रृंगार और शान्त को छोड़कर अन्य कोई रस मुख्य रूप में रहता है। व्यायोग का उदाहरण– सौगन्धिकाहरण।

6.3.5 समवकार

नाट्य के इस भेद में देवों और दैत्यों पर आश्रित प्रसिद्ध चरित वर्णित रहता है। इसमें विमर्श नामक संधि को छोड़कर शेष सभी संधियाँ रहती हैं। अंकों की संख्या तीन होती है। इनमें से प्रथम अंक में ही दो संधियाँ होती हैं। शेष दो अंकों अर्थात् दूसरे और तीसरे अंकों में केवल एक–एक संधि होती है। इसमें प्रख्यात देव, मानव आदि बारह नायक होते हैं जो धीरोदात्त कोटि के होते हैं। इनका फल भी पृथक्–पृथक् होता है। मुख्य रस वी होता है जबकि अन्य रस भी विद्यमान रहते हैं। कैशिकी वृत्ति स्वल्प ही होती है। इसमें बिन्दु और प्रवेशक नहीं होते हैं। समवकार का उदाहरण– समुद्रमथनम्।

6.3.6 डिम

माया, इन्द्रजाल (जादू), युद्ध और क्रोध से उद्भ्रान्त आदि की चेष्टाओं वाला, चन्द्र और सूर्य ग्रहणों से युक्त, प्रख्यात कथानक वाला नाट्य भेद डिम कहलाता है। इसमें मुख्य रस रौद्र होता है, शेष सभी रस अमुख्य रूपा में रहते हैं। इसमें अंकों की संख्या चार होती है। विष्कम्भक और प्रवेश नामक अर्थोपक्षेपकों का प्रयोग इसमें नहीं होता है। इसमें नायकों की संख्या 16 होती है जिनमें देव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, महोरग, भूत, प्रेत और पिशाच आदि अत्यन्त उद्धत नायक होते हैं। कैशिकी के अतिरिक्त अन्य वृत्तियाँ इसमें रहती हैं। विमर्श के अतिरिक्त अन्य चार संधियाँ इसमें होती हैं। इसमें शान्त, हास्य और श्रृंगार रस नहीं होते, इनके अतिरिक्त शेष छः रस होते हैं। डिम का उदाहरण– त्रिपुरदाह।

6.3.7 ईहामृग

इसकी कथावस्तु प्रख्यात और कवि कल्पना का मिश्रण होती है। अंकों की संख्या चार होती है। इसमें मुख, प्रतिमुख ओर निर्वहण संधियाँ होती हैं। नायक और प्रतिनायक

मनुष्य और देवता होते हैं किन्तु ये यथासंख्य नियम से रहित होते हैं। अर्थात् कहीं नायक मनुष्य और प्रतिनायक देवता, तो कहीं नायक देवता और प्रतिनायक मनुष्य हो जाते हैं। यहाँ नायक और प्रतिनायक धीरोद्धत रू` में होते हैं। प्रतिनायक गुप्त रूप से अनुचित कृत्यों में लिप्त रहता है। वे इच्छा न करती हुई दिव्य रमणी को अपहरण आदि के द्वारा पाने की इच्छा रखते हैं। प्रतिनायक को लेकर कुछ–कुछ शृंगाराभास का प्रदर्शन करना चाहिए। देवता और मनुष्य उद्धत नायक और प्रतिनायक सहित कुल दस पताकानायक होते हैं। नायक और प्रतिनायक के विरोध के पूर्णता तक जाने के बाद भी युद्ध टाल दिया जाता है। इस रूपक में महात्मा जन वध की स्थिति में पहुँच जाने पर भी मारने योग्य नहीं होते हैं। कुछ विद्वानों का मानना है कि इसमें एक ही अंक होता है और नायक देवता ही होता है। जबकि कुछ विद्वानों का मानना है कि इसमें दिव्य स्त्री के हेतु युद्ध होता है और छः नायक होते हैं। इस रूपक का ईहामृग नामकरण भी रोचक है। मृगमरीचिका में मृग द्वारा जल की चाह की भाँति इसमें नायक किसी अलभ्य रमणी को पाने की इच्छा करता है। ईहामृग का उदाहरण– कुसुमशेखरविजय।

6.3.8 अंक

इसे उत्सृष्टिकांक भी कहते हैं। इसमें एक ही अंक रहता है। इसके नायक साधारण मनुष्य होते हैं। इसमें स्थायी रस करुण होता है। यह बहुत सी स्त्रियों के विलाप से युक्त रहता है। इसमें प्रख्यात कथानक को कवि अपनी बुद्धि से हेर–फेर कर नया आकार देता है। इसमें भाण की तरह सन्धियाँ, वृत्तियाँ और लास्य के अंग होते हैं। इसमें नायक–प्रतिनायक की जय–पराजय और वाग् युद्ध की योजना की जाती है। अंक का उदाहरण– शर्मिष्ठाययाति।

6.3.9 वीथी

वीथी में अंकों की संख्या केवल एक होती है। उत्तम, मध्यम या अधम प्रकृति के किसी एक नायक की कल्पना इसमें होती है। वह आकाशभाषितों के द्वारा उक्ति–प्रत्युक्ति का आश्रय लेकर शृंगार को अधिक मात्रा में सूचित करता है, शेष रस भी रहते हैं। इसमें मुख ओर निर्वहण सन्धियाँ होती हैं, जबकि पाँचों अर्थप्रकृतियाँ विद्यमान रहती हैं। मनीषी जन इसके 13 अंगों का निर्देष करते हैं। वीथी का उदाहरण– मालविका।

6.3.10 प्रहसन

इस रूपक में भाण के समान संधि, संधि के अंग और लास्यांग होते हैं। इसमें अंकों की संख्या केवल एक होती है। इसमें कवि निन्दनीय जनों का चरित्र चित्रित करता है। इस प्रहसन में वृत्ति आरभटी होती है। विष्कम्भक और प्रवेशक नामक अर्थोपक्षेपक इसमें नहीं होते हैं। इसमें मुख्य रस हास्य होता है। वीथी के अंगों की स्थिति इसमें नहीं रहती है। इसका नायक तपस्वी, ब्रह्मवादी और ब्राह्मण– इनमें से कोई एक होता है। इसके तीन भेद होते हैं– शुद्ध, संकीर्ण और विकृत।

शुद्ध प्रहसन– जहाँ इसका नायक धृष्ट होता है उसे शुद्ध हास्य कहते हैं। जैसे– कन्दर्पकेलि।

संकीर्ण प्रहसन– जब धृष्ट से भिन्न किसी अन्य पुरुष को नायक बना कर प्रहसन रचा जाता है, उसे संकीर्ण कहते हैं। जैसे– धूर्तचरित।

विकृत प्रहसन– जिसमें नपुंसक, कंचुकी और तपस्वी– ये लोग आवारा, नट, योद्धा आदि के वेष और भाषा को लेकर अभिनय करें, वह विकृत प्रहसन कहलाता है।

6.4 उपरूपक

विशेष लक्षणों को छोड़कर उपरूपकों के सामान्य लक्षण नाटक के समान माने गये हैं। उपरूपक अठारह माने गये हैं। इनके नाम निम्नलिखित हैं– नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थान, उल्लाप्य, काव्य, प्रेंखण, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणी, हल्लीश और भाणिका। साहित्यदर्पण का उद्धरण द्रष्टव्य है–

'नाटिका त्रोटकं गोष्ठी सट्टकं नाट्यरासकम्।
प्रस्थानोल्लाप्यकाव्यानि प्रेङ्खणं रासकं तथा।।
संलापकं श्रीगदितं शिल्पकं च विलासिका।
दुर्मल्लिका प्रकरणी हल्लीशो भाणिकेति च।।
अष्टादश प्राहुरुपरूपकाणि मनीषिणः।
विना विषेशं सर्वेशां लक्ष्म नाटकवन्मतम्।।'

6.3 सारांश

'विभिन्न आचार्यों के अनुसार नाट्य की परिभाषा तथा भेद' नामक इस इकाई में आपने नाट्य की परिभाषा जानने हेतु अध्ययन किया। इस इकाई में भरतमुनि के द्वारा नाट्यशास्त्र में दिये गये नाट्य के विस्तृत लक्षण को, धनंजय द्वारा दशरूपक में दिये गये नाट्य लक्षण को और आचार्य विश्वनाथ द्वारा साहित्यदर्पण में दिये गये नाट्यलक्षण का आपने अध्ययन किया। राम आदि की अवस्थाओं का अनुकरण ही नाट्य है। यह अनुकरण नटों द्वारा चार प्रकार के अभिनयों के माध्यम से किया जाता है। यह चतुर्विध अभिनय है– आंगिक, वाचिक, सात्विक और आहार्य। यही नाट्य दृश्य होने के कारण रूप भी कहलाता है। इसके अतिरिक्त नट पर राम आदि के स्वरूप को आरोपित करने के कारण यह रूपक भी कहा जाता है। विषय–वस्तु की दृष्टि से नाट्य का क्षेत्र बहुत व्यापक होता है। यह नाट्य वस्तु, नेता (पात्र) और रस के आधार पर दस भेदों वाला हो जाता है। वे भेद हैं– नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अंक, वीथी और प्रहसन। इनमें से प्रत्येक के लक्षण नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। रूपकों के सामान्य गुणों से युक्त रहने वाले उपरूपक होते हैं। ये अठारह प्रकार के हैं। उपरूपकों के नाम हैं– नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थान, उल्लाप्य, काव्य, प्रेंखण, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणी, हल्लीश और भाणिका। इनके भी लक्षण साहित्यदर्पण में प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार आपने नाट्य के लक्षण, नाट्य के भेदों के लक्षण के बारे में जाना। साथ ही उपरूपक के भेदों से आपका परिचय हुआ। इस इकाई का अध्ययन करने के पाश्चात् आप नाट्य को परिभाषित कर सकेंगे। रूपकों के दस प्रकारों का विवेचन एवं उपरूपकों के अठारह भेदों के नामों का वर्णन कर सकेंगे।

6.4 शब्दावली

1. श्रव्य काव्य– वह काव्य जिसे केवल सुना जा सके।
2. दृश्य काव्य– वह काव्य जिसे सुनने के साथ रंगमंच पर देखा जा सके।

3. नाट्य– चार प्रकार के अभिनय द्वारा प्राचीन राम आदि की अवस्थाओं का अनुकरण।
4. रूप– रंगमंच पर दृश्य (दर्शनीय) होने के कारण नाट्य का एक अन्य नाम रूप है।
5. रूपक– नट पर प्राचीन राम आदि का आरोप किया जाने के कारण नाट्य रूपक कहलाता है।
6. अनुकार्य– प्राचीन काल के वास्तविक राम आदि जिनका कि अनुकरण किया जाता है।
7. अनुकर्ता– नट या अभिनेता, जो राम आदि की अवस्थाओं को अभिनीत करता है।

6.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, पुनर्मुद्रण 2017 ई.।
2. साहित्यदर्पण, विश्वनाथ, शेषराजशर्मा रेग्मी, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, त्रयोदश सं. 2010 ई.।
3. दशरूपक, धनंजय, डॉ. भोलाशंकर व्यास, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, पुनर्मुद्रित सं. 2000 ई.।

6.6 बोध प्रश्न

1. नाट्य के रूप तथा रूपक नामकरण पर टिप्पणी लिखिए।
2. भरतमुनि के अनुसार नाट्य को परिभाषित कीजिए।
3. धनंजय के अनुसार नाट्य की परिभाषा लिखिए।
4. विश्वनाथ के अनुसार नाट्य की परिभाषा लिखिए।
5. नाटक को परिभाषित कर उदाहरण लिखिए।
6. प्रकरण को उदाहरण सहित समझाइए।
7. नाट्य के किन्हीं तीन भेदों को उदाहरण सहित समझाइए।
8. उपरूपकों के नाम लिखिए।
9. नाट्य की आवश्यकता पर प्रकाश डालिए।

इकाई 7 अभिनय तथा वस्तु

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 अभिनय : परिभाषा

7.2.1 भेद

7.2.2 आंगिक

7.2.3 वाचिक

7.2.4 सात्त्विक

7.2.5 आहार्य

7.3 वस्तु परिभाषा

7.3.1 भेद

7.3.2 आधिकारिक वस्तु

7.4 पताका

7.5 प्रकरी

7.6 सारांश

7.7 शब्दावली

7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

7.9 बोध प्रश्न

7.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से हम सीख सकेंगे–

- नाट्यशास्त्र के आलोक में अभिनय का ज्ञान करना।
- नाट्यशास्त्र के आलोक मे अभिनय के भेदों का ज्ञान करना।
- नाट्यशास्त्र के आलोक मे कथावस्तु का बोध प्राप्त करना।
- नाट्यशास्त्र के आलोक मे कथावस्तु के भेदों का बोध प्राप्त करना।

7.1 प्रस्तावना

जगत् स्रष्टा ब्रह्मा जी के आदेश पर भरत मुनि ने देव रंजन एवं लोक रंजन के निमित्त नाट्यशास्त्र नाम के एक ग्रन्थ की रचना की। इस महान ग्रन्थ में नाट्य सम्बन्धि सम्पूर्ण तत्त्वों का विवेचन एवं वर्णन सूक्ष्म और विस्तार पूर्वक किया गया है। यद्यपि अभिनय अवस्था का अनुकरण मात्र है – **अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्**। परन्तु जब वही अनुकरण रंगस्थल पर किया जाता है तब वह अनुकरण पूर्ण व्यवस्थित नियमावलि एवं मर्यादाओं को ध्यान में रखकर शास्त्रीय पद्धति से किया जाना चाहिए इसलिए शास्त्र का निर्माण किया गया। तब शास्त्रीय पद्धति से किस प्रकार अभिनय किया जाय इसके

लिए शास्त्र निर्देश प्रस्तुत करते है। इसी प्रकार काव्य आदि में जिस कथा को प्रस्तुत किया जाता है उस कथावस्तु की परिभाषा एवं उनके भेदों का उदाहरण सहित बोध शास्त्र के माध्यम से होता है। यहाँ पर अभिनय की परिभाषा, उसके भेदों को तथा अधिकारिक कथावस्तु, प्रासंगिक कथावस्तु, प्रकरी, पताका को जानने का प्रयास करेंगे।

7.2 अभिनय : परिभाषा

भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र के अष्टम अध्याय में अभिनय की परिभाषा एवं उसके भेदों पर प्रकाश डाला है। अभिनय शब्द की व्याकरण शास्त्र के अनुसार निष्पत्ति के विषय में प्राप्त होता है कि अभि उपसर्ग पूर्वक णीञ् धातु के साथ एरच् सूत्र से अच् प्रत्यय करने पर यह शब्द सिद्ध होता है जिसका अर्थ है आभिमुख्य अर्थात् नाटक में नट आदि के द्वारा जब सामाजिकों के सम्मुख कथा में स्थित पात्रों उनके आचरण, व्यवहार तथा अवस्थाओं का अनुकरण किया जाता है तब वह अभिनय कहलाता है। यथा –

''अभिपूर्वस्तु णीञ् धातुराभिमुख्यार्थनिर्णये।
यस्मात्पदार्थान्नयति तस्मादभिनयः स्मृतः।।''

(नाट्यशास्त्र, 8/6)

अभिनय के माध्यम से नट आदि सामाजिकों के समक्ष विविध अर्थों की विशिष्ट भावनाओं का प्रदर्शन करते है। अभिनय के विविध प्रकार होने के कारण इसके अंग एवं उपांगों का भी वर्णन प्राप्त होता है। अभिनय मुख्य चार प्रकार का होता है – आंगिक, वाचिक, सात्त्विक, आहार्य।

7.2.1 भेद

भरत मुनि ने अपने ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में अभिनय के चार भेदों को मान्यता प्रदान करते है जिसमें प्रथम भेद के अन्तर्गत आंगिक, द्वितीय भेद के अन्तर्गत वाचिक, तृतीय भेद के अन्तर्गत सात्विक और चतुर्थ भेद के अन्तर्गत आहार्य भेद को मानते हैं । यथा –

''आङ्गिको वाचिकश्चैव ह्याहार्यः सात्त्विकस्तथा।''

(नाट्यशास्त्र, 8/9)

7.2.2 आंगिक

अभिनय का प्रथम भेद आंगिक है। इस अभिनय के अन्तर्गत शरीर के अंगों का संचलन एवं मुख के विविध प्रकार की आकृतियों एवं चेष्टाओं का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार अभिनय शरीर, मुखज तथा चेष्टाकृत तीन प्रकार का होता है यथा –

''त्रिविधस्त्वाङ्गिको दृष्टः शारीरो मुखजस्तथा।
तथा चेष्टाकृतश्चैव शाखाङ्गोपाङ्गसंयुतः।।

(नाट्यशास्त्र, 8/11)

इसकी अंग एवं उपांग शाखाएं होती है। शिर, हाथ, उरः, पार्श्व, कटी और पाद ये आंगिक अभिनय के छः अंग है। नेत्र, भ्रू, नाशिका, अधर, कपोल और चिबुक ये छः इस अभिनय के उपांग है। प्रयोग कर्ता नट आदि इसके शाखाएं कही गयी है। इसमें नाट्य विषयक सूचना को इसका अंकुर कहा गया है। इस अभिनय में नृत्य का प्रयोग

होता है जिसमें शरीर के सभी अंगों का प्रयोग होता है। इस नृत्य में 13 प्रकार का शिर कर्म होता है – आकम्पित, कम्पित, धूत, विधुत, परिवाहित, आधूत, अवधूत, अंचित, निहंचित, परावृत्त, उत्क्षिप्त, अधोगत, लोलित। आठ रस दृष्टियां इसके अन्तर्गत प्राप्त होती है – कान्ता, भयानका, हास्या, करुणा, अद्भुता, रौद्री, वीरा, बीभत्सा। इसी प्रकार स्थायी भावों की आठ दृष्टियां भी प्राप्त होती है – स्निग्धा, हृष्टा, दीना, क्रुध्दा, हप्ता, भयान्विता, जुगुप्सिता, विस्मिता,। इनके अतिरिक्त 16 दृष्टियां और कही गयी है – शून्या, मलिना, श्रान्ता, लज्ज्वाविता, ग्लाना, शंकिता, विषण्णा, मुकुला, कुंचिता, अभितप्ता, जिह्मा, ललिता, वितर्किता, अर्धमुकुला, विभ्रान्ता, विप्लुता, आकेकरा, विकोशा, त्रस्ता, मदिरा। इस प्रकार 36 दृष्टियाँ इस अभिनय के अन्तर्गत आती हैं। इस प्रकार इन सभी के भेदों, प्रभेदों की परिभाषा तथा इनके प्रयोग का समस्त विवरण इस अभिनय के अन्तर्गत आता है।

7.2.3 वाचिक

अभिनय का द्वितीय भेद वाचिक अभिनय है। भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र के चौदहवे अध्याय में इस अभिनय का वर्णन किया है। यहां इस भेद को वागभिनय कहा गया है। वाचिक अभिनय स्वर और व्यंजन के प्रयोग से सम्पन्न होता है। यथा –

''यो वागभिनयः प्रोक्तो मया पूर्वं द्विजोत्तमाः।
लक्षणं तस्य वक्ष्यामि स्वरव्यंजनसम्भवम्।।''

(नाट्यशास्त्र, 15/1)

अभिनवभारतीकार इस अभिनय को वाणी ही अभिनय है, ऐसा कहते हैं – ''वागेवाभिनयः वाचिकाभिनयः'' इसका अर्थ है कि नट आदि अभिनेता रंगमंच पर आकर वाणी के माध्यम से जो कुछ भी उच्चारित करता है, वाद–संवाद करता है वही वाचिक अभिनय है – यो निरूपितः स लक्ष्यते। वाणी के विषय में प्राप्त होता है कि वह वाणी ही अभिनय के नाट्यप्रयोग का शरीर है। तीनों प्रकार के अभिनय आंगिक अभिनय, सात्त्विक अभिनय और आहार्य अभिनय वाक्यार्थ को ही प्रस्तुत करते है। अर्थात् सहृदय के हृदय में अपने अभिनय के माध्यम से वाक्यार्थ की सृष्टि करते है। वाणी ही पूरे विश्व का कारण है क्योंकि सभी वेदादि शास्त्र एवं विद्याऐं वाणी पर ही निर्भर है। इस के अन्तर्गत दो प्रकार के पाठ्यों को माना गया है प्रथम संस्कृत, द्वितीय प्राकृत। नाट्य में चार प्रकार की भाषाओं का प्रयोग किया जाता है प्रथम के अन्तर्गत अतिभाषा, द्वितीय के अन्तर्गत आर्यभाषा, तृतीय के अन्तर्गत जाति भाषा, चतुर्थ के अन्तर्गत योन्त्यन्तरी भाषा का परिगणन प्राप्त होता है। इन भाषाओं में अतिभाषा देवताओं की भाषा है, राजाओं के लिए आर्य भाषाएं है, जाति भाषा नागरिकों की भाषा है और योन्यन्तरी भाषा मलेच्छों की भाषा कही गयी है। यथा –

''अतिभाषार्यभाषा च जातिभाषा तथैव च।
तथा योन्यन्तरी चैव भाषा नाट्ये प्रकीर्तिता।।''

(नाट्यशास्त्र)

इसके अनन्तर व्यंजन, सन्धि, विभक्ति, वचन, नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात, तद्धित, समास एवं नामधातुक ये बारह अंग संस्कृत पाठ्य के माने जाते हैं। इस प्रकार सभी प्रकार का अक्षर ज्ञान, पद ज्ञान, वाक्य ज्ञान, वैदिक और लौकिक छन्दों का ज्ञान, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत आदि का ज्ञान इस अभिनय के अन्तर्गत अपेक्षित है। जब पात्रों का

संवाद संस्कृत से इतर प्राकृत भाषा में अर्थात् संस्कृत से निम्नतर भाषा में हाने लगता है तब इसे ही प्राकृतिक पाठ कहते है और यह पाठ कथा में वर्णित भिन्न भिन्न दशाओं के कारण परिवर्तित होता है तब इसका अपना विशेष स्वरूप हो जाता है यथा–

''एतदेव विपर्यस्तं संस्कारगुणवर्जितम्।
विज्ञेयं प्राकृतं पाठ्यं नानावस्थान्तरात्मकम्।।''

(नाट्यशास्त्र)

प्राकृतिक पाठ्य तीन प्राकर का होता है इसमें प्रथम पाठ्य में संस्कृत में प्रयुक्त होने वाले शब्दों के समान शब्दों का प्रयोग या तत्सम शब्दों का प्रयोग। द्वितीय पाठ्य में विभ्रष्ट शब्दों का प्रयोग या तद्भव शब्दों का प्रयोग इसके अन्तर्गत होता है। तृतीय पाठ्य के अन्तर्गत ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है जो देश या लोक में प्रसिद्ध होते हैं। यथा –

''त्रिविधं तच्च विज्ञेयं नाट्ययोगे समासतः।
समानशब्दं विभ्रष्टं देशीगतमथापि च।।''

(नाट्यशास्त्र)

प्राकृतिक भाषा के सात भेद प्राप्त होते है प्रथम भेद है मागधी, द्वितीय भेद है अवन्ती, तृतीय भेद है प्राच्या, चतुर्थ भेद है शौरसेनी, पंचम भेद है अर्धमागधी, षष्ठ भेद है बाह्लीका और सप्तम भेद है दाक्षिणात्य। मागधी राजाओं के राजमहलों की भाषा है। चेट, राजपुत्र एवं धनिकों की भाषा अर्धमागधी भाषा होती है। विदूषक की प्राच्या भाषा को कहा गया है। धूर्त लोगों की भाषा अवन्ती भाषा होती है। नायिका तथा उसकी सहेलियों की अविनोधिनी भाषा को जाना जाता है। द्यूत खेलने वालों की तथा युद्धवीरों की दक्षिणात्य भाषा को जानना चाहिए। उदीच्यों की बाह्लीक भाषा होती है। इसके अतिरिक्त महाराज, महारानी, दासी, गणिका, अप्सरा, देवता, विद्वान्, आदि संस्कृत भाषा का प्रयोग करते है। अध्ययन रहित, धन से प्रमत्त, धन के अभाव वाले तथा स्वेच्छाचारी ये संस्कृत से इतर भाषा का प्रयोग करते है।

7.2.4 सात्विक

विना किसी प्रयत्न के शरीर की स्वभाविक क्रिया ही सात्विक भाव है और जब इसी भाव का नायक आदि के द्वारा अनुकरण किया जाता है तब यह अभिनय सात्विक अभिनय कहलाता है। भरत मुनि ने सात्विक अभिनय को उत्तम कोटि का अभिनय माना है। इसके अन्तर्गत आठ सात्विक भावों का परिगणन किया गया है – स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु तथा प्रलय। यथा –

''स्तम्भः त्वेदोऽथ रोमांचः स्वरभेदोऽथ वेपथुः।
वैवर्ण्यमश्रु प्रलयः इत्यष्टौ सात्विकाः स्मृताः।।''

इसमें प्रसन्न होने पर मुस्कान आ जाना, दुःख की स्थिति में आखों से आंसू आना, भयभीत हाने के कारण मुखमण्डल का पीला हो जाना, इत्यादि प्रकार से यह सात्विक अभिनय प्रकट होता है। इसमें भावों के आवेगों के परिणाम स्वतः ही प्रस्फुटित होते हैं। इसके अन्तर्गत अभिनेता पात्र को सामाजिकों के सामने प्रस्तुत करता है। जैसे कोई नायक राम के पात्र को प्रस्तुत करता है तब वह सामाजिकों के सामने राम के सहज

गुणों को प्रदर्शित करता है। नाट्यशास्त्र में इसी भावस्थ अभिनय का लक्षण इस प्रकार प्राप्त होता है –

''विभावयति यस्माच्च नानार्थान् हि प्रयोगतः।''

(नाट्यशास्त्र. 8/7)

और भी

''सात्त्विकः पूर्वमुक्तस्तु भावैस्तु सहितो मया।''

(नाट्यशास्त्र. 8/10)

7.2.5 आहार्य

नाट्यशास्त्र के 21 वे अध्याय में आहार्य नामक चतुर्थ अभिनय का वर्णन किया गया है। इस अभिनय के अन्तर्गत पात्र नाट्य के अनुरूप और प्रकृति के अनुरूप वेश विन्यास, अलंकार, परिधान, अंग रचना, रंगमंच, चैतन्य और अचैतन्य का नाट्यधर्मी व्यक्तित्व का अनुकरण करते है। आहार्य अभिनय चार प्रकार का होता है – पुस्तरचना, अलंकरण, अंगरचना, सज्जीव।

''चतुर्विधन्तु नेपथ्यं पुस्तोऽलंकार एव च।
तथाङ्गरचना चैव ज्ञेयः सज्जीव एव च।।''

(नाट्यशास्त्र. 21/5)

विविध प्रकार की अवस्थाओं को तथा प्रकृतियों को रंगमंच पर प्रदर्शन करने के पूर्व नेपथ्य में अपने रूप को उस पात्र के अनुकूल साज सज्जा करना ही इस आहार्य अभिनय का मुख्य उद्देश्य है – **नानावस्थाः प्रकृतयः पूर्वं नेपथ्यसाधिताः**। आहार्य अभिनय के अन्तर्गत नैपथ्य में जो श्रृंगार आदि होता है वही जानना चाहिए – **आहार्याभिनयो नाम ज्ञेयो नेपथ्यजो विधिः**।

नट आदि के वस्त्र, आभूषण, रूप सज्जा ही आहार्य कहा जाता है। आहार्य के माध्यम से पात्र के किस देश का है, उसकी क्या स्थिति थी, वह किस समय का है इसका ज्ञान भी इसके माध्यम से होता है। समय परिवर्तनशील होता है इसलिए रहने का ढंग, उसकी दिनचर्या, क्रियाकलाप, वस्त्र–आभूषण आदि के माध्यम से पात्र के देश, काल, परिस्थिति का ज्ञान कराती है। इसीलिए पात्र के देश, काल, परिस्थिति का ज्ञान होने के बाद ही पात्र के क्या और कैसे, किस वर्ण के वस्त्र होंगे, उसके अस्त्र–शस्त्र कैसे होंगे, उसकी केश सज्जा कैसी होगी आदि आहार्य के अन्तर्गत होते है। यदि कोई नट किसी नेता का पात्र करता है तब वह भारतीय वेश–भूषा के अनुसार कुर्ता–पायजामा पहनेगा, हाथ में घड़ी पहनेगा, सिर पर टोपी लगायगा इस प्रकार राजनेता की वेश–भूषा होती है। सन्यासी का पात्र करने पर वही नट लाल या केसरिया वस्त्र पहनेगा, जटाऐं धारण करेगा, रुद्राक्ष या तुलसी की माला धारण करेगा, हाथ में कमण्डलु धारण करेगा, दण्ड भी धारण करेगा – इस प्रकार का ध्यान आहार्य के अन्तर्गत रखा जाता है।

7.3 वस्तु परिभाषा

भरत मुनि के द्वारा रचित नाट्यशास्त्र में दशरूपकों का वर्णन किया गया है उन्हीं दशरूपकों के वस्तु, नेता, और रस तीन भेद होते है। दशरूपककार धनंजय ने अपने

ग्रन्थ दशरूपक में कारिका के रूप में इन तीनों को इस प्रकार प्रस्तुत किया है – **वस्तु नेता रसस्तेषां भेदकः**। यहां वस्तु से अर्थ रूपक में स्थित कथा वस्तु से है। कथावस्तु से तात्पर्य है – कवि का कल्पना प्रबन्ध। यहां वस्तु से तात्पर्य लोक में दिखाई देने वाला पदार्थ नहीं है अपितु नाटकादि रूपकों में इतिहास प्रसिद्ध नायक के चरित्रादि का वर्णन, उसके द्वारा किये गये कार्य एवं फल की प्राप्ति जिस वाक्य प्रबन्ध के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है वह कथा वस्तु कहलाती है। इसी कथा वस्तु को इतिवृत्त भी कहा जाता है। इस इतिवृत्त को नाट्य का शरीर कहा गया है यथा –

''इतिवृत्तं तु नाट्यस्य शरीरं परिकीर्तितम्।''

(नाट्यशास्त्र. 19/1)

7.3.1 भेद

नाटकादि रूपकों में जिस कथा वस्तु का वर्णन किया गया है नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से उसके दो भेद प्राप्त होते हैं यथा – **वस्तु च द्विधा**। प्रथम भेद को आधिकारिक कथावस्तु एवं द्वितीय भेद को प्रासंगिक कथावस्तु कहते है।

''इतिवृत्तं द्विधा चैव बुधस्तु परिकल्पयेत्।
आधिकारिकमेकं स्यात् प्रासङ्गिकमथापरम्।।''

(नाट्यशास्त्र. 19/2)

7.3.2 आधिकारिक वस्तु

''**तत्राधिकारिकं मुख्यम्**'' तत्र अर्थात वहां नाटक आदि दशरूपकों में प्रधानभूत मुख्य कथावस्तु को अधिकारिक कथा वस्तु कहते है।

जैसे महर्षि वाल्मीकि रचित आदि महाकाव्य रामायण में राम और सीता का वृत्तान्त अधिकारिक कथा वस्तु है।

अधिकारिक शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में उसका लक्षण प्राप्त होता है कि कथावस्तु के अन्त में शुभ परिणाम या शुभ फल पर स्वामित्व प्राप्त करना अधिकार कहलाता है। प्राप्त होने वाले उस फल का स्वामी अधिकारी कहलाता है। नायक के द्वारा फल प्राप्ति तक का सम्पूर्ण वृत्तान्त आधिकारिक कथावस्तु कहलाती है। यथा –

''अधिकारः फलस्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः।
तन्निर्वृत्तमभिव्यापि वृत्तं स्यादाधिकारिकम्।। ''

(दशरूपक,1/12)

उदाहरणार्थ रामायण में सकल राक्षस समूह का विनाश कर सीता को प्राप्त करना तथा राम राज्य को स्थापित करना ही इसका फल है। इस फल की प्राप्ति राम को होती है इस कारण से रामायण में प्रारम्भ से लेकर रावण वध एवं सीताप्राप्ति तथा राज्याभिषेक तक की कथा को अधिकारिक कथावस्तु कह सकते हैं।

7.3.3 प्रासंगिक कथावस्तु

मुख्यकथा वस्तु के अङ्गभूत जिन उपकथाओं को उसमें क्रम पद्धति से प्रस्तुत किया जाता है उन्हें प्रासंगिक कथावस्तु कहते है यथा – ''**अङ्गं प्रासङ्गिकं विदुः**'' **(दशरूपक,1/11)**

जैसे रामायण में राम के अतिरिक्त विभीषण की कथा, सुग्रीव की कथा, अनसूया की कथा प्रासंगिक कथावस्तु के अन्तर्गत आती हैं।

दशरूपककार प्रासंगिक कथावस्तु की परिभाषा प्रस्तुत करते है कि जिस कथा या वृत्तान्त के माध्यम से अधिकारिक कथा वस्तु का प्रयोजन सिद्ध होता है तथा उस कथा का भी प्रयोजन सिद्ध होता है वह प्रासंगिक कथावस्तु कहलाती है यथा –

''प्रासङ्गिकं परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसङ्गतः''

(दशरूपक,1/13)

प्रासंगिक कथावस्तु का उद्देश्य अधिकारिक कथा वस्तु की फलप्राप्ति में सहायता प्रदान करना होता है। जैसे सुग्रीव की कथा प्रयोजन बाली का वध है तथा अपना राज्य एवं पत्नी को प्राप्त करना है यह सुग्रीव की कथा का प्रयोजन है जो राम के द्वारा सिद्ध कराया जाता है तथा इसी सुग्रीव की कथा का मुख्य प्रयोजन राम की सहायता कर रावण पर विजय प्राप्त कराना है जो कि सुग्रीव के माध्य से सम्पन्न होता है। इस प्रकार की कथा केवल एक कथा के अंश में प्रस्तुत की गई है और राम की कथा सुग्रीव की कथा के पूर्व से एवं बाद तक चलती है। इसलिए सुग्रीव की कथा प्रासंगिक कथावस्तु के अन्तर्गत आती है।

प्रासंगिक कथावस्तु के भी दो भेद दशरूपककार प्रस्तुत करते है। प्रथम भेद पताका तथा द्वितीय भेद प्रकरी है।

7.4 पताका

प्रासंगिक कथावस्तु के प्रथम भेद के विषय में प्राप्त होता है – जो अनुबन्ध से युक्त प्रासंगिक कथावस्तु नायक के साथ साथ निरन्तर चलती है वह पताका कहलाती है यथा – ''**सानुबन्धं पताकाख्यं**'' जैसे – सुग्रीव की कथा किष्किन्धाकाण्ड से लेकर के उत्तरकाण्ड तक चलती है। इसी प्रकार विभीषण का वृत्तान्त भी लंकाकाण्ड से उत्तरकाण्ड तक चलता है। इस प्रकार के वृत्तान्त मुख्य नायक के पताका चिह्न की तरह अधिकारिक कथा तथा मुख्य नायक की परिपोषक होती है।

7.5 प्रकरी

इसके अन्तर्गत इस प्रकार की कथा वस्तु की गणना की जाती है जो एक स्थान या प्रदेश से प्रारम्भ होकर वहीं पर समाप्त हो जाती है यथा – ''**प्रकरी च प्रदेशभाक्**''

इसका उदाहरण रामायण में स्थित शबरी का प्रसंग आता है जो एक स्थान से प्रारम्भ होकर के एक ही स्थान पर समाप्त हो जाता है अर्थात् एक ही प्रदेश का अंग मात्र रह जाता है जो नायक के साथ आगे तक नहीं जाता है।

7.6 सारांश

इस अध्याय में हमने अभिनय तथा वस्तु का अध्ययन किया है। इनका वर्णन नाट्यशास्त्र में मिलता है। नाट्यशास्त्र भरत मुनि के द्वारा रचित प्रथम ग्रन्थ है। नाटक संबन्धी सम्पूर्ण तत्त्वों का विवेचन इसमें किया गया है। अवस्था के अनुकरण को नाट्य या अभिनय कहते है। यह अभिनय चार प्रकार का होता है – आंगिक अभिनय में

शरीर के सभी अंगों का प्रयोग किया जाता है जैसे हाथों का प्रयोग, पैरों का प्रयोग मुख से निर्मित विविध मुद्राओं का प्रयोग, आंखों का प्रयोग नेत्र का तिरछा देखना, पलकों को झपका देना आदि । वाचिक अभिनय के अन्तर्गत सभी प्राकर के सम्वाद, सभी पात्रों के द्वारा जो सम्वाद होता है वह आते है। सात्त्विक अभिनय में पात्रों के माध्यम से रसों के स्थाई भावों को प्रकट किया जाता है जिसमें पात्र जब दुःखी होता है तब उसकी आंखों में आँसू का आ जाना, क्रोधित होने पर आँखों का लाल हो जाना या पात्र के द्वारा ऊँचे स्वर से बोलना, लजाने के लिए आँखों को नीचे झुका लेना आदि। आहार्य अभिनय में सभी पात्रों के वस्त्र–आभूषण आदि से तैयार होना प्राप्त होता है। इन सभी अभिनयों के भी भेद प्रभेद इसके अन्तर्गत प्राप्त होते है। इसी प्रकार काव्य या नाटक आदि में वाक्यावली के माध्यम से पात्र के क्रिया कलाप, आचार, व्यवहार, चरित्र, एवं सम्पूर्ण वृत्तान्त को कथा वस्तु कहते हैं तथा उस कथा वस्तु के भी मुख्य कथावस्तु तथा प्रासंगिक कथा वस्तु के रूप में दो भेद प्राप्त होते है। काव्य या नाटक जिस कथा को केन्द्रित कर लिखा जाता है, वही मुख्य कथावस्तु होती है। केन्द्रित कथावस्तु के अलावा जो भी छोटी छोटी कथाएं इसके अन्तर्गत आती है वे प्रासंगिक कथावस्तु कहलाती हैं। इसके अनन्तर कथा वस्तु के प्रभेदों का वर्णन भी प्राप्त होता है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप नाट्य में होने वाले अभिनय और नाट्य की वस्तु (कथावस्तु) का भेद सहित वर्णन कर सकते हैं।

7.7 शब्दावली

1. अभिनय – किसी भी पात्र का अनुकरण करना।
2. आंगिक – शरीर के अंग अर्थात् हाथ, पैर, मुख, नयन आदि के द्वारा हाव–भाव प्रकट करना।
3. वाचिक – सम्वाद करना, मुख से शब्द बोलना।
4. सात्त्विक – रसों के स्थाई भावों को प्रकट करना, आसू आना, क्रोध में आंखे लाल होना आदि।
5. आहार्य – वेश–भूषा आदि पहनना।
6. कथावस्तु – वृत्तान्त, जिसका वर्णन ग्रन्थ में हाता है।
7. अधिकारिक कथावस्तु – नायक से सम्बन्धित सम्पूर्ण वर्णन।
8. प्रासंगिक कथावस्तु – सहनायक, प्रतिनायक आदि से सम्बन्धित वर्णन।
9. प्रकरी – कथावस्तु का भेद, छोटी छोटी कथों का वर्णन ।
10. पताका – कथावस्तु का दूसरा भेद, यह कथा नायक के साथ साथ चलती है।

7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. नाट्यशास्त्र, भरतमुनिकृत, सम्पादक मधुसूदन शास्त्री, काशी हिन्दु विश्वविद्यालय, वाराणसी।
2. दशरूपक, धनंजयकृत, हिन्दी टीकाकार डॉ. भोला शंकर व्यास, प्रकाशन चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।

7.6 बोध प्रश्न

1. अभिनय किसे कहते है।
2. अभिनय के कितने भेद होते है।
3. आंगिक अभिनय किसे कहते है।
4. वाचिक अभिनय किसे कहते है।
5. सात्त्विक अभिनय किसे कहते है।
6. आहार्य अभिनय किसे कहते है।
7. अभिनय के भेदों को विस्तार से लिखिए।
8. अधिकारिक कथावस्तु किसे कहते है।
9. प्रासंगिक कथा वस्तु किसे कहते है।
10. प्रकरी किसे कहते है।
11. पताका किसे कहते है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 8 अर्थप्रकृतियाँ तथा अन्य नाट्यतत्त्व

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 अर्थप्रकृतियाँ

8.2.1 बीज

8.2.3 पताका

8.2.4 प्रकरी

8.2.5 कार्य

8.3 कार्यावस्थाएँ

8.3.1 आरम्भ

8.3.2 यत्न

8.3.3 प्राप्त्याशा

8.3.4 नियताप्ति

8.3.5 फलागम

8.4 नाट्यसन्धियाँ

8.4.1 मुख

8.4.2 प्रतिमुख

8.4.3 गर्भ

8.4.4 विमर्श

8.4.5 उपसंहृति

8.5 अर्थोपक्षेपक

8.5.1 विष्कम्भक

8.5.2 प्रवेशक

8.5.3 चूलिका

8.5.4 अंकास्य

8.5.5 अंकावतार

8.6 सारांश

8.7 शब्दावली

8.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

8.9 बोध प्रश्न

8.0 उद्देश्य

नाट्य शास्त्रीय तत्वों के वर्णन से सम्बन्धित इस इकाई का अध्ययन कर लेने के पश्चात् आप :

- नाट्यशास्त्रीय अर्थप्रकृतियां और उनके भेदों को समझा सकेंगें।

- नाट्यशास्त्रीय कार्यवस्थाओं को उनके भेदों सहित विस्तारपूर्वक बता सकेंगे।
- अर्थोपक्षेपक की परिभाषा तथा नाटक आदि में इनके प्रयोग का वर्णन कर सकेंगें।
- संस्कृत नाटकों में प्रयुक्त इन तत्वों की उपयोगिता पर प्रकाश डालेंगें।
- पॉच प्रकार की कार्यवस्थाएॅ नाटकों में प्रयुक्त होती हैं, उनका उल्लेख कर सकेंगें।

8.1 प्रस्तावना

भारतीय समाज में वेद, पुराण आदि माध्यमों के अलावा सत् चरित्र, सत् मार्ग, सत् ज्ञान और शिष्ट आचरण व्यवहार पद्धति, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति सहज, सरल, केवल दृश्य और श्रव्य के साथ लोकरंजन के माध्यम से ज्ञान कराने के लिए देवताओं के विशेष अनुरोध पर सृष्टि कर्ता ब्रह्मा के आदेश पर आचार्य भरत मुनि ने नाट्यशास्त्रीय आदि ग्रन्थ नाट्यशास्त्र की रचना की। यह नाट्यशास्त्र 36 अध्यायों में विभक्त होकर नाट्य सम्बन्धी सकल तत्त्वों का सूक्ष्म एवं विस्तार पूर्व प्रयोग सहित वर्णन प्रस्तुत करता है। इस इकाई के अन्तर्गत हम नाट्यशास्त्रीय प्रमुख विषयात्मक बिन्दुओं का ज्ञान प्राप्त करेगें जिनके अन्तर्गत अर्थप्रकृतियों, कार्यावस्थाओं, नाट्यसन्धियों और अर्थोपक्षेपकों का परिगणन किया गया है। इन सभी नाट्यतत्त्वों की परिभाषाओं एवं उनके भेदों को भी हम यहाँ पर जानेंगे।

8.2 अर्थप्रकृतियाँ

नाटकादि साहित्य में जिस कथा का वर्णन किया जाता है उस इतिवृत्त की पांच अर्थप्रकृतियां होती हैं। इन अर्थप्रकृतियों का सीधा सीधा सम्बन्ध कथा वस्तु से माना जाता है। नायक के द्वारा जिस अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति का उद्देश्य या प्रयोजन जिन कारणतत्त्वों के माध्यम से सिद्ध होता है उन्हें अर्थप्रकृतियां कहतें हैं। यथा – **प्रयोजनसिद्धिहेतवः**। अर्थात् प्रयोजन सिद्धि में सहायक साधन तत्त्व ही अर्थप्रकृतियां हैं यथा – **अर्थः फलं तस्य प्रकृतयः उपायाः फलहेतवः**। अर्थप्रकृति शब्द में अर्थ शब्द से अभिप्राय कथा वस्तु में स्थित प्राप्य साध्य फल है। ये नायक के इप्सित लक्ष्य की प्राप्ति में सहायता प्रदान करती हैं। बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य इनकों ही अर्थप्रकृतियों के पांच भेदों के रूप में स्वीकार किया गया है। यथा –

> **''बीजबिन्दुपताकाख्यप्रकरीकार्यलक्षणाः।**
> **अर्थप्रकृतयः पंच ता एताः परिकीर्तिताः।।'' (दशरूपक. 1/18)**

8.2.1 बीज

बीज नित्य सूक्ष्म अवस्था में होता है। जिस प्रकार वट वृक्ष का बीज सूक्ष्म होता है और जब उस बीज को अनुकूल परिस्थितियां प्राप्त होती है तब वही सूक्ष्म बीज अपने आकार में वृद्धि कर, बृहद स्वरूप को प्राप्त कर वट वृक्ष रूपी फल के रूप में दिखाई देता है। अर्थात् बीज का फल या प्रयोजन वृक्ष रूप को प्राप्त करना है। उसी प्रकार नाटकादि साहित्य के प्रारम्भ में बीज वाक्य का रोपण किया जाता है या स्थापित किया जाता है जो कि विविध प्रकार से उस इतिवृत्त के अन्तर्गत अपने स्वरूप में उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त करते हुए नाटक के मुख्य प्रयोजनात्मक फल को प्राप्त कराकर समाप्त हो जाता है। यथा –

''स्वल्पमात्रं समुत्सृष्टं बहुधा यद्विसर्पति।
फलावसानं यं चैव बीजं तत् परिकीर्तितम्।।''

(नाट्यशास्त्र. 21/21)

उदाहरण के लिए महाकवि भवभूति विरचित उत्तररामचरित नाटक में नट के द्वारा बीजात्मक वाक्य कहा जाता है ''**देव्यामपि हि वैदेह्यां** ...... से लेकर नट के द्वारा ही उक्त वाक्य **सर्वथा ऋषयो देवाश्च श्रेयो विधास्यन्ति**'' यहां तक सीता का लोक में अपवाद की सूचना देना इसका बीज वाक्य है। नाटक के अन्त में लोकापवाद का निराकरण दिखाकर नाटक के सुखद अन्त का संकेत प्राप्त होता है। इसी प्रकार रत्नावली नाटिका में यौगन्धरायण के द्वारा इप्सित है कि उदयन का रत्नावली से मिलन कराना। यौगन्धरायण का बीजात्मक वाक्य प्राप्त होता है कि **यौगन्धरायणः – कः सन्देहः। द्वीपादन्यस्मात् इति पठति, इत्यादिना 'प्रारम्भेऽस्मिन्स्वामिनो वृद्धिहेतौ''** यहां तक बीज संकेत की प्राप्ति होती है।

8.2.2 बिन्दु

नाटकादि में महाकार्य बीज को उपस्थित करने के उपरान्त अवान्तर बीज अर्थात् बिन्दु के विषय में परिभाषा प्राप्त होती है। उपस्थित कथा के मध्य में अन्य कथाओं के आ जाने पर उन कथाओं से वह खण्डित न हो जाए इस हेतु से कथावस्तु को उसी इतिवृत्त से संयुक्त रखने तथा उसको निरन्तर आगे ले जाने में जो तत्त्व सहायक होता है उसे बिन्दु कहते है। यथा –

अवान्तरार्थविच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम्।

(दशरूपक.1/17)

और भी –

प्रयोजनानां विच्छेदे यदविच्छेदकारणम्।
यावत्समाप्तिर्बन्धस्य स बिन्दुः परिकीर्तितः।।

(नाट्यशास्त्र. 21/22)

उदाहरण के लिए देखना चाहिए कि उत्तररामचरित में राम के द्वारा जब शम्बूक वध किया जाता है तो एक प्रकरण समाप्त होता है और कथा विच्छिन्न होती है कथा को पुनः पूर्व कथा से संयुक्त करने के लिए मुरला के द्वारा कहे गये वाक्य **सखि तमसे....... से लेकर अनिर्भिन्नो...... रामस्य करुणो रसः**। राम के हृदय में उपस्थित करुण रस एवं उनकी दयनीय स्थिति ही नाटक का बिन्दु तत्त्व है।

8.2.3 पताका

जब रूपकादि में मुख्य कथा वस्तु के बीच में अन्य कोई दूसरी कथा आती है और उस कथा का प्रयोजन मुख्य कथा वस्तु पर उपकार करना या उसकी परिपुष्टता करना होता है तब इस प्रकार की कथा को पताका कहा गया है। यथा –

यद्वृत्तन्तु परार्थं स्यात् प्रधानस्योपकारकम्।
प्रधानवच्च कल्प्येत सा पताकेति कीर्तिता।।

(नाट्यशास्त्र. 21/23)

उदाहरणार्थ रामायण में सुग्रीव की कथा पताका कथा है इस कथा का नायक सुग्रीव श्रीराम के कार्य में सहायता प्रदान करता है। इस प्रकार सुग्रीव की कथा मुख्य कथा वस्तु में उपकार का कार्य करती है।

8.2.4 प्रकरी

''**प्रकर्षेण स्वार्थानपेक्षया करोति इति प्रकरी**'' अर्थात् मुख्य कथा वस्तु की प्रयोजन सिद्धि के लिए जिसका कथा में प्रवेश कराया जाए तथा जिसमें अनुबन्ध विहीनत्व रहता है उस कथा विशेष को प्रकरी के नाम से जाना जाता है। उत्तररामचरितम् का शम्बूक वध को प्रकरी के अन्तर्गत रखा जा सकता है। यथा –

फलं प्रकल्प्यते यस्याः परार्थायैव केवलम्।

अनुबन्धविहीनत्वात् प्रकरीति विनिर्दिशेत्।।

(नाट्यशास्त्र. 21/24)

8.2.5 कार्य

रूपकादि में वर्णित कथा वस्तु के नायक के द्वारा लक्ष्य या प्रयोजन की सिद्धि जिन विविध साधनों एवं माध्यमों से होती है उन माध्यमों का वर्णन कर नायक के सकल जीवन के विशिष्ट कथात्मक अंश का प्रस्तुतिकरण करना ही कार्य कहलाता है। यथा–

यदाधिकारिकं वस्तु सम्यक्प्राज्ञैः प्रयुज्यते।

तदर्थे यस्समारम्भस्तत् कार्यं परिकीर्तितम्।।

(नाट्यशास्त्र. 21/25)

8.3 कार्यावस्थाएँ

रूपक आदि में जिस इतिवृत्त का वर्णन किया जाता है उस इतिवृत्त के नायक के द्वारा फल प्राप्ति के हेतु से जो प्रयत्न और कर्म का उद्योग किया जाता है जिससे प्रयोजन की सिद्धि होती है उन्हें कार्य अवस्थाएं कहते है। यथा – **संसाध्ये फलयोगे तु व्यापारः कारणस्य यः।** कार्य अवस्थाएं पांच प्रकार की होती है । प्रथम आरम्भ, द्वितीय प्रयत्न, तृतीय प्राप्त्याशा, चतुर्थ नियताप्ति और पंचम फलागम अवस्था होती है।

अवस्थाः पंच कार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः।

आरम्भयत्नप्राप्त्याशानियताप्तिफलागमाः।।

(दशरूपक 1/19)

8.3.1 आरम्भ

जब नायक के निमित्त अभीष्ट फल की प्राप्ति के लिए जो इच्छा या उत्सुकता प्रकट की जाती है उसे ही आरम्भ कहते है। यथा –

औत्सुक्यमात्रमारम्भः फललाभाय भूयसे।

(दशरूपक 1/20)

जैसे रत्नावली नाटिका में मन्त्री यौगन्धरायण के द्वारा राजा की उन्नति एवं सम्मृद्धि के लिए उदयन और रत्नावली के मिलन के सम्बन्ध में उत्सुकता प्रकट करनी है आरम्भ का उदाहरण है।

8.3.2 यत्न

रूपक आदि में फल की प्राप्ति के निमित्त पूर्ण योजनात्मक पद्धति से प्रयास करना या उपाय करना ही प्रयत्न या यत्न कहा जाता है।

प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः।।

(दशरूपक 1/20)

उदाहरण स्वरूप रत्नावली नाटिका में सागरिका महाराज उदयन को प्राप्त करने की उनके दर्शन करने की इच्छा करती है और महाराज उदयन के दर्शन करने के लिए सागरिका ने महाराज का चित्र रेखांकित किया जिसको देखकर वह प्रसन्न होती है और चित्र को ही महाराज समक्ष कर उनसे वार्तालाप करती है। इस प्रकार चित्र निर्माण का यह उपाय ही यत्न कहा जाता है।

8.3.3 प्राप्त्याशा

तृतीय प्रकार की अवस्था का नाम प्राप्त्याशा है। नायक प्रयोजन सिद्धि हेतु कई तरह के उपाय करता है जिससे सफलता की संभावना बन जाती है। साथ ही कई प्रकार के विघ्नों के कारण असफलता की आशंका उत्पन्न हो जाती है। इस कारण फलप्राप्ति के में कोई स्पष्ट निर्णायक स्थिति नहीं बन पाती है। फल प्राप्ति होगी या नहीं होगी, यह सम्भावना फल की प्राप्ति हेतु किये जा रहे उपायों तथा विघ्नों के बीच झूलती रहती है, ऐसी अवस्था को प्राप्त्याशा कहते है।

उपायापायशङ्काभ्यां प्राप्त्याशा प्राप्तिसम्भवः।।

(दशरूपक 1/21)

उदाहरण के लिए रत्नावली नाटिका के तृतीय अंक में जब सागरिका तथा उदयन के समागम की स्थिति निर्मित होती है तब विदूषक के द्वारा यह शंका प्रकट की जाती है कि महारानी वासवदत्ता इस मिलन में बाधक न हो जाए यह शंका होना ही प्राप्त्याशा है।

8.3.4 नियताप्ति

इस चतुर्थ अवस्था का नाम नियताप्ति है। जब कार्य की सिद्धि में किसी भी प्रकार का विघ्न दिखाई न दे और न ही उसकी सिद्धि में कोई आशंका ही न हो तथा फल की प्राप्ति सुनिश्चित रूप से दिखाई दे तब ऐसी स्थिति को नियताप्ति कहा जाता है।

अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिः सुनिश्चिता।।

(दशरूपक 1/21)

रत्नावली नाटिका में महारानी वासवदत्ता की प्रसन्न होने से महाराज उदयन और सागरिका के मिलन की प्राप्ति का दिखाई देना ही नियताप्ति है।

8.3.5 फलागम

जब नाटक आदि में नायक को सम्पूर्ण फल की प्राप्ति हो जाती है तब इसे ही फलागम कहा जाता है। जैसे –

समग्रफलसम्पत्तिः फलयोगो यथोदितः।।

(दशरूपक 1/22)

रत्नावली नाटिका में उदयन को सागरिका की प्राप्ति तथा चक्रवर्ती सम्राट बनना ही फलागम कहा जा सकता है।

8.4 नाट्यसन्धियाँ

सभी नाटकादि में सन्धियों का प्रयोग किया जाता है। सन्धियां नाटक में वर्णित कथांशों को आपस में सम्बद्ध करने का काम करती है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार हमाने शरीर की सभी सन्धि स्थान सभी अंगों को आपस में संयुक्त करने का काम करते है। कथानक का मुख्य उद्देश्य किसी एक मुख्य प्रयोजन को सिद्ध करना होता हैं जसमें अनेक कथाओं का समावेश होता है उन सभी कथाओं का एक प्रयोजन की सिद्धि के लिए परस्पर जिससे सम्बन्ध स्थापित किया (गठ जोड़ किया जाए) जाए उसे सन्धि कहते हैं– **''अन्तरैकार्थसंबन्धः संधिरेकान्वये सति।।''** (दशरूपक 1/23)। सन्धि के पांच भेद प्राप्त होते हैं जिसके अन्तर्गत प्रथम मुख, द्वितीय प्रतिमुख, तृतीय गर्भ, चतुर्थ अवमर्श और पंचम भेद उपसंहृति है। ये पांचों सन्धियां नाटक में वर्णित विविध कथानकों के मध्यम में सम्बन्ध स्थापित करती है।

मुखप्रतिमुखे गर्भः सावमर्शोपसंहृतिः।।

(दशरूपक 1/24)

8.4.1 मुख

सन्धियों में प्रथम सन्धि मुख सन्धि का परिगणन होता है। मुख सन्धि की परिभाषा प्राप्त होती है – रूपक आदि में वर्णित उस भाग को मुख सन्धि कहते है जो बीज के आरम्भ के लिए प्रयुक्त की गई हो तथा सभी भावों और रसों से अभिव्याप्त होकर प्रारभ्भ अवस्था से जिसका सम्बन्ध प्राप्त होता है।

यत्र बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससम्भवा।
काव्यं शरीरानुगता तन्मुखं परिकीर्तितम्।।

(नाट्यशास्त्र 21/37)

मुखं बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससम्भवा।।

(दशरूपक 1/24)

मुख सन्धि के बारह भेद प्राप्त होते है जिनका प्रयोग नाटक आदि दस रूपकों में किया जाता है। उनके नाम इस प्रकार प्राप्त होते है – उपक्षेप, परिकर, परिन्यास, विलाभन, उक्ति, प्राप्ति, समाधान, विधान, परिभावना, उद्भेद, भेद, करण।

अङ्गानि द्वादशैतस्य बीजारम्भसमन्वयात्।।
उपक्षेपः परिकरः परिन्यासो विलोभनम्।।
उक्तिः प्राप्तिः समाधानं विधानं परिभावना।
उद्भेदवेदकरणान्यन्वर्थान्यथ लक्षणम्।।

(दशरूपक 1/25,26)

8.4.2 प्रतिमुख

सन्धियों के द्वितीय भेद का नाम प्रतिमुख सन्धि है। इस सन्धि में बिन्दु तथा प्रयत्न का समावेश रहता है । नाटक में बीज का प्रयोग किया जाता है कभी वह बीज प्रत्यक्ष हाता है और कभी वह अप्रत्यक्ष होता है जब वह बीज अपने का विकास कर लेता है और वह साक्षात् प्रकट हो जाता है तब उसको प्रतिमुख सन्धि कहते हैं।

लक्ष्यालक्ष्यतयोद्‌भेदस्तस्य प्रतिमुखं भवेत्।
बिन्दुप्रयत्नानुगमादङ्‌गान्यस्य त्रयोदश।।

(दशरूपक 1/30)

बीजस्योद्घाटनं यत्तु दृष्टनष्टमिव क्वचित्।
मुखे न्यस्तस्य सर्वत्र तद्वै प्रतिमुखं भवेत्।।

(नाट्‌यशास्त्र. 21/38)

प्रतिमुख सन्धि के तेरह भेद प्राप्त होते है जिनका प्रयोग रूपक में किया जाता है वह भेद इस प्रकार है – विलास, परिसर्प, विधूत, शम, नर्म, नर्मद्युति, प्रगमन, निरोध, पर्युपासन, वज्र, पुष्प, उपन्यास, वर्णसंहार।

8.4.3 गर्भ

नाटक में प्रयुक्त बीज के उपस्थित किये जाने के अनन्तर अग्रिम कथानकों के मध्य में जब बीज नष्ट हो जाता है और उसका उसमें बीज का बार बार अन्वेषण कर प्राप्त किया जाता है तब इसे गर्भ सन्धि कहते हैं।

गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुहुः।
द्वादशाङ्‌गः पताका स्यान्न वा स्यात्प्राप्तिसंभवः।।

(दशरूपक 1/36)

गर्भ सन्धि के बारह भेद प्राप्त होते है – अभूताहरण, मार्ग, रूप, उदाहरण, क्रम, संग्रह, अनुमान, तोटक, अधिबल, उद्वेग, संभ्रम, आक्षेप।

अभूताहरणं मार्गो रूपोदाहरणे क्रमः।
संग्रहश्चानुमानं च तोटकाधिबले यथा।।
उद्वेगसंभ्रमाक्षेपाः लक्षणं च प्रणीयते।।

(दशरूपक 1/30, 31)

8.4.4 विमर्श

इस सन्धि के विषय में प्राप्त होता है कि रूपक में फल प्राप्ति के उद्योग के अन्तर्गत क्रोध, विलोभन, व्यसन, से विमर्श किया जाता हो तथा गर्भ सन्धि के माध्यम से बीज का प्रकटीकरण कर दिया जाता हो उसे विमर्श सन्धि कहते है।

क्रोधेनावमृशेद्ययत्र व्यसनाद्वा विलोभनात्।
गर्भनिर्भिन्नबीजार्थः सोऽवमर्श इति स्मृतः।।

(दशरूपक 1/43)

गर्भ सन्धि के 13 अंग प्राप्त होते है जो इस प्रकार है – अपवाद, संफेट, विद्रव, द्रव, शक्ति, द्युति, प्रसंग, छलन, व्यवसाय, विरोधन, प्ररोचना, विचलन, और आदान।

तत्रापवादसंफैटौ विद्रवद्रवशक्त्यः।

द्युतिः प्रसङ्गश्छलनं व्यवसायो विरोधनम्।।

प्ररोचना विचलनमादानं च त्रयोदश।।

(दशरूपक 1/44,45)

8.4.5 उपसंहृति

नाट्यसन्धियों में अन्तिम पांचवीं सन्धि को उपसंहृति या निर्वहण सन्धि कहते है। नाटक में स्थित इतिवृत्त के बीज सहित सभी सन्धियों के संयुक्त एकत्व में समाहित होकर मुख्य प्रयोजन की जिसके माध्यम से सिद्धि होती है उसे उपसंहृति सन्धि कहते है।

बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम्।

(दशरूपक 1/48)

ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत्।।

(दशरूपक 1/49)

इस सन्धि के 14 भेद होते हैं जो इस प्रकार हैं – सन्धि, विबोध, ग्रथन, निर्णय, परिभाषण, प्रसाद, आनन्द, समय, कृति, भाषा, उपगूहन, पूर्वभाव, उपसंहार और प्रशस्ति।

संधिर्विबोधो ग्रथनं निर्णयः परिभाषणाम्।

प्रसादानन्दसमयाः कृतभाषोपगूहना।।

पूर्वभावोपसंहारौ प्रशस्तिश्च चतुदर्श।।

(दशरूपक 1/49, 50)

8.5 अर्थोपक्षेपक

रूपकादि के निमार्ण का उद्देश्य मंच पर प्रदर्शन करना होता है अतः शास्त्रीय दृष्टि से कुछ दृश्यों का मंच पर अभिनय नहीं किया जा सकता है जिनको केवल सूचना के माध्यम से बताया जाता है यह सूचना किसके द्वारा दी जानी चाहिए इसके लिए अर्थोपक्षेपक का निमार्ण किया गया । इस प्रकार कहा जा सकता है कि जो ऐसे प्रसंग हैं जो नीरस हैं या बीभत्स हैं या जिनको रंग मंच से प्रदर्शित करना शुभ नहीं है नैतिक लोक मर्यादा के कारण जिस दृश्य को प्रदर्शित नहीं किया जा सकता जिनकी सूचना देना ही अनिवार्य है ऐसे कथात्मक अंशों को सूच्य कहा जाता है। यथा –

अर्थोपक्षेपकैः सूच्यं पंचभिः प्रतिपादयेत्।

इस प्रकार जिनके माध्यम से सूचना प्रेषित की जाती है ऐसे तत्त्वों को अर्थोपक्षेपक कहते हैं। अर्थोपक्षेपक पाँच होते हैं – विष्कम्भक, चूलिका, अंकास्य, अंकावतार और प्रवेशक।

विष्कम्भचूलिकाङ्कास्याङ्कावतारप्रवेशकैः।।

(दशरूपक 1/58)

8.5.1 विष्कम्भक

नाटक में प्रयुक्त कथानक के मध्य में ऐसी घटनाएं जो पूर्व में हो चुकी हैं, वर्तमान में हो रही हैं या भविष्य में होने वाली हैं उनकी मध्य पात्रों के द्वारा सूक्ष्म विधि से सूचना को दिया जाना ही विष्कम्भक कहलाता है। यथा –

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः।।

(दशरूपक 1/59)

वह विष्कम्भक भी अनेक प्रकार का होता है जिसके अन्तर्गत शुद्ध विष्कम्भक, सङ्कीर्ण विष्कम्भक, नीच विष्कम्भक और नीच विष्कम्भक।

एकानेककृतः शुद्धः सङ्कीर्णो नीचमध्यमैः।।

(दशरूपक 1/60)

8.5.2 प्रवेशक

विष्कम्भक की ही भांति प्रवेशक होता है इसमें भी उन्हीं सूचनाओं को दिया जाता है जो विष्कम्भक में दी जाती है इसमें केवल इतना अंतर होता है कि वह सूचना नीच पात्रों के द्वारा दी जाती है इसमें दी गई सूचना जिस वाक्य या उक्ति के माध्यम से दी जाती है वह उदात्त नहीं होती है और प्रवेशक के द्वारा दी जाने वाली सूचना की योजना दो अंको के मध्य में रखी जाती है या उसका न्यास किया जाता है और इसमें संस्कृत आदि शिष्ट भाषा का प्रयोग नहीं किया जाता है। यथा –

तद्वदेवानुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।
प्रवेशोऽङ्कद्वयस्यान्तः शेषार्थस्योपसूचकः।।

(दशरूपक 1/60, 61)

8.5.3 चूलिका

जब भावी या संभावित घटनाओं की सूचना जवनिका (नेपथ्य स्थान मंच के पृष्ठ भाग में जो परदा लगा रहता है जहाँ साज सजावट के स्थान स्थित होते है) के अन्दर स्थित पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत की जाती है तो वह चूलिका नामक अर्थोपक्षेपक होता है।

अन्तर्जवनिकासंस्थैश्चूलिकार्थस्य सूचना।।

(दशरूपक 1/61)

8.5.4 अंकास्य

रूपकादि में जब किसी अंक का अंत हो रहा हो और उसी अंक में आये हुए पात्रों के माध्यम से उसी अंक में छूट जाने वाली विषय वस्तु की सूचना दी जाये तब उसको अंकास्य कहा जाता है। जैसे –

अङ्कान्तपात्रैरङ्कास्यं छिन्नाङ्कस्यार्थसूचनात्।।

(दशरूपक 1/62)

8.5.5 अंकावतार

अर्थोपक्षेपक का यह पांचवां अंग है इस अंग के अन्तर्गत प्रथम अंक में स्थित कथा वस्तु का अवच्छेद किये बिना उसी कथा वस्तु से सम्पृक्त दूसरे अंक की कथा वस्तु का वर्णन हो तब ऐसी स्थिति को अंकावतार कहते है।

अङ्कावतारस्त्वङ्कान्ते पातोऽङ्कस्याविभागतः।।

एभिः संसूचयेत् सूच्यं दृश्यमङ्कैः प्रदर्शयेत्।।

(दशरूपक 1/62, 63)

8.6 सारांश

संस्कृत नाटकादि दस रूपकों में अनिवार्य रूप से अर्थप्रकृतियां, कार्यावस्थाएँ, नाट्य सन्धियां और अर्थोपक्षेपक का प्रयोग किया जाता है। अर्थप्रकृतियों के अन्तर्गत बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य इन पांच का परिगणन होता है जिनका कथानक से सीधा सम्बन्ध होता है । इसी प्रकार पांच कार्यावस्थाओं का भी ज्ञान प्राप्त होता है जिनमें आरम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम । इनका प्रयोग नायक के द्वारा फल प्राप्ति के साधन के अंतर्गत होता है। नाटकस्थ कथावस्तु के बीच में सम्बन्ध स्थापित रहे इसके लिए पांच सन्धियों का निमार्ण भी नाट्यशास्त्र में प्राप्त होता है वे नाट्यसन्धियां है – मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और उपबृंहण। नाटक में जिन दृश्यों की सूचना मात्र दी जानी चाहिए वह सूचना किसके माध्यम से, किस भाषा में और किस स्थान पर दी जानी चाहिए इसका ज्ञान हमें अर्थोपक्षेपक से प्राप्त होता है वे भी पांच ही कहे गये है विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिका, अंकास्य और अंकावतार । इस प्रकार हमने इस इकाई के अन्तर्गत अर्थप्रकृतियां, कार्यावस्थाएं, नाट्यसन्धियां और अर्थोपक्षेकों को जाना है।

8.7 शब्दावली

बीज – कथावस्तु का सूक्ष्म रूप

बिन्दु – संयुक्त करने वाला

पताका – उपकथा जो प्रधान कथा के साथ चले

प्रकरी – एक देश वाली कथा

कार्य – फलप्राप्ति में साधक

आरम्भ – कुछ चाहने की इच्छा का प्रकट होना

यत्न – प्रयत्न, प्रयास

प्राप्त्याशा – विघ्न की आशंका से ग्रसित होकर फल की आशा करना

नियताप्ति – निश्चित फल की प्राप्ति दिखाई देना

फलागम – फल की प्राप्ति

मुख – भाव और रस सहित बीज की उत्पत्ति

प्रतिमुख – नष्ट हुए बीज का उद्घाटन

गर्भ – बीज का विकास

विमर्श – फल प्राप्ति के विषय में चिन्तन

उपसंहृति – सभी सन्धियों का एकत्रीकरण होकर फल प्राप्त कराना

विष्कम्भक – संस्कृत भाषा में मध्य कोटि के पात्रों द्वारा सूचना देने वाला

प्रवेशक – संस्कृत इतर भाषा में नीच कोटि के पात्रों द्वारा सूचना देने वाला

चूलिका – नेपथ्य से सूचना देने वाला

अंकास्य – अंक के अन्त में विद्यमान पात्रों द्वारा सूचना देने वाला

अंकावतार – प्रथम अंक के अंत में स्थित कथा वस्तु को छिन्न भिन्न करे बिना दूसरे अंक में प्रवेश कराने वाला

8.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. नाट्यशास्त्र, भरतमुनिकृत, व्याख्याकार बाबू शुक्ल शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, वि. सं. 2065
2. नाट्यशास्त्र, भरतमुनिकृत, सम्पादक मधुसूदन शास्त्री, काशी हिन्दु विश्वविद्यालय, वाराणसी।
3. दशरूपक, धनंजयकृत, हिन्दी टीकाकार डॉ. भोला शंकर व्यास, प्रकाशन चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।

8.9 बोध प्रश्न

1. अर्थप्रकृति किसे कहते हैं?
2. अर्थप्रकृति के कितने भेद होते हैं?
3. बीज किसे कहते हैं?
4. बिन्दु किसे कहते हैं?
5. पताका किसे कहते हैं?
6. प्रकरी किसे कहते हैं?
7. कार्य किसे कहते हैं?
8. कार्य अवस्था किसे कहते हैं?
9. कार्य अवस्थाओं के कितने भेद होते हैं?
10. आरम्भ किसे कहते हैं?
11. प्रयत्न किसे कहते हैं?
12. प्राप्त्याशा किसे कहते हैं?
13. नियताप्ति किसे कहते हैं?
14. फलागम किसे कहते हैं?
15. नाट्यसन्धि किसे कहते हैं?
16. नाट्यसन्धि के कितने भेद होते हैं?
17. मुख किसे कहते हैं?

18. प्रतिमुख किसे कहते हैं?
19. गर्भ किसे कहते हैं?
20. विमर्श किसे कहते हैं?
21. निवर्हण किसे कहते हैं?
22. अर्थोपक्षेपक किसे कहते हैं?
23. अर्थोपक्षेपक के कितने भेद होते हैं?
24. विष्कम्भक किसे कहते हैं?
25. प्रवेशक किसे कहते हैं?
26. चूलिका किसे कहते हैं?
27. अंकावतार किसे कहते हैं?
28. अंकास्य किसे कहते हैं?

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 9 नाट्यसंवाद के प्रकार

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 नाट्यसंवाद के प्रकार – सर्वश्राव्य या प्रकाश, अश्राव्य या स्वगत, नियत श्राव्य– जनान्तिक, अपवारित, आकाशभाषित

9.3 सारांश

9.4 शब्दावली

9.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

9.6 बोध प्रश्न

9.0 उद्देश्य

नाट्य संवाद के प्रकार से संबंधित इस इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप–

- सर्वश्राव्य के बारे में जान सकेंगे।
- अश्राव्य का अध्ययन करेंगे।
- जनान्तिक को समझ सकेंगे।
- अपवारित से परिचित हो सकेंगे।
- आकाशभाषित का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

भरतमुनि ने नाट्य की रचना के प्रसंग में स्वयं इसे स्वीकार किया था कि उन्होंने ऋग्वेद से पाठ्य अर्थात् संवाद लिये हैं। संवादों का नाट्य में विशेष महत्त्व है। इनसे नाट्य का रूप निखर कर सामने आ पाता है। नाट्य के माध्यम से लोक का व्यवहार मंच पर उकेरा जाता है। ऐसा करने के लिए संवादों के कई प्रकार नाट्यशास्त्र में बताये गये हैं जिससे सही रूप से भाव की अभिव्यक्ति दर्शक तक पहुँच सके। जिस प्रकार लोक में हम देखते हैं कि कुछ बातें सबको सुनायी जा सकती हैं जबकि कुछ बातें कुछ व्यक्तियों के बीच ही सम्पन्न होती हैं और कुछ तो व्यक्ति मन में कहकर रह जाता है। इन सब की मंच पर अभिव्यक्ति हो सके इसी के लिए संवाद के कुछ प्रकारों का निरूपण किया गया है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि ये प्रकार वाकई लोक व्यवहार की उन स्थितियों को व्यक्त करने में समर्थ होते हैं जिन के लिए ये लाये जाते हैं। विस्तृत लोक के व्यवहार में आने वाले संवादों को मंच पर कुछ तकनीकि पूर्ण तरीकों से व्यक्त कर देना नाट्यशास्त्र की अद्वितीय विशेषता भी है। अतः नाट्य में इस प्रकार के संवादों को निरूपित करने के लिए सर्वश्राव्य या प्रकाश, अश्राव्य या स्वगत, नियत श्राव्य– जनान्तिक, अपवारित और आकाशभाषित का उपयोग किया जाता है।

उपर्युक्त नाट्य में प्रयुक्त होने वाले संवादों के प्रकारों को आपके अध्ययन के लिए इस इकाई में प्रस्तुत किया जा रहा है।

9.2 नाट्यसंवाद के प्रकार

नाट्य की कथावस्तु को दर्शकों तक पहुँचाने के लिए नाट्यकार संवादों का आश्रय लेते हैं। वे कथावस्तु को संवादों में गूँथ देते हैं। संवादों को सुन–सुन कर दर्शक सारी कथावस्तु को जान लेते हैं। इन संवादों में कुछ विद्यमान कथावस्तु तीन प्रकार की कही गयी है– सर्वश्राव्य, अश्राव्य और नियतश्राव्य। दशरूपककार धनंजय कहते हैं–

'सर्वेशां नियतस्यैव श्राव्यमश्राव्यमेव वा।'

अर्थात् यह कथावस्तु संवाद में प्रस्तुति की दृष्टि से तीन प्रकार की है। कुछ संवाद सभी के सुनने योग्य, कुछ अपने आप से कहने योग्य और कुछ सीमित लोगों से कहने योग्य होते हैं। यहाँ यह ध्यान रखना है कि यह विधान केवल मंच पर उपस्थित पात्रों के लिए होते हैं। जैसे कि सर्वश्राव्य के अन्तर्गत बोले जाने वाले संवाद मंच पर उपस्थित सभी पात्रों के लिए सुनने योग्य होते हैं। जबकि अश्राव्य संवाद मंच पर उपस्थित अन्य पात्रों के लिए सुनने योग्य नहीं होते हैं। इसमें संवाद बोलने वाला पात्र संवाद बोलते समय ऐसा अभिनय करता है जैसे वह अपने आप से बात कर रहा हो और मंच पर उपस्थित अन्य पात्र भी ऐसा अभिनय करते हैं जैसे वे पात्र द्वारा बोले गये अश्राव्य संवाद को नहीं सुन रहे हैं। प्रत्येक संवाद इतनी तेज ध्वनि में बोला ही जाएगा कि सभी दर्शक सुन सकें। यह विधान कथावस्तु की अभिव्यक्ति को सुगम बनाने के लिए किये गये हैं।

अब आपके अध्ययन के लिए संवादों के इन प्रकारों को प्रस्तुत किया जा रहा है। सर्वप्रथम सर्वश्राव्य या प्रकाश का अध्ययन कीजिए।

9.2.1 सर्वश्राव्य या प्रकाष

सर्वश्राव्य कथावस्तु को ही प्रकाश भी कहा जाता है। इसको परिभाषित करते हुए धनंजय कहते हैं– 'सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात्'

अर्थात् कुछ कथावस्तु सबके सुनने लायक होती है। ऐसी कथावस्तु को जिस संवाद के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है, वह संवाद सर्वश्राव्य या प्रकाश कहलाता है।

9.2.2 अश्राव्य या स्वगत

जो कथावस्तु मंच पर उपस्थित अन्य पात्रों को सुनाने के लिए नहीं होती है, अपि तु केवल वक्ता मन ही मन जिन बातों को कहना चाहता है। इस तरह की कथावस्तु को अश्राव्य कहते हैं क्योंकि यह मंच पर उपस्थित अन्य पात्रों के लिए श्रवणीय नहीं है। इसे ही स्वगत कहा जाता है क्योंकि वक्ता इसे स्व अर्थात् अपने आप से ही मानों कह रहा है। इसे निरूपित करते हुए धनंजय कहते हैं कि – ''अश्राव्यं स्वगतं मतम्'' (दशरूपकम्)

9.2.3 नियत श्राव्य

नियत पात्रों को सुनाने योग्य कथनोपकथन नियतश्राव्य कहलाता है। कुछ कथावस्तु ऐसी होती है जो मंच पर उपस्थित सभी पात्रों के मध्य संवाद का विषय न होकर कुछ

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

पात्रों के मध्य वार्तालाप का विषय होती है, अतः निश्चित पात्रों के बीच संवाद का विषय होने के कारण नियतश्राव्य वस्तु कहलाती है। यह नियतश्राव्य वस्तु दो प्रकार की होती है– जनान्तिक और अपवारित। जैसा कि धनंजय कहते हैं–

''द्विधाऽन्यन्नाट्यधर्माख्यं जनान्तमपवारितम्'' (दषरूपकम्)

9.2.4 जनान्तिक

जब मंच पर अन्य पात्रों के उपस्थित रहने पर भी कोई दो पात्र परस्पर इस तरह से वार्तालाप करें कि वे अन्यों को सुनाना नहीं चाह रहे हैं। इस हेतु वे हाथ के पंजे से 'त्रिपताकाकर' की मुद्रा बनाते हैं। इससे यह सूचना दी जाती है कि जिस ओर त्रिपताकाकर बनाया गया है उन पात्रों को यह संवाद सुनाना अभीष्ट नहीं है। जैसा कि धनंजय कहते हैं–

''त्रिपताककरेणान्यानपवार्यान्तरा कथाम्।
अन्योन्यामन्त्रणं यत्स्याज्जनान्ते तज्जनान्तिकम्।।''

वस्तुतः त्रिपताकाकर के द्वारा सम्मुख उपस्थित दर्शकों को यह जताया जाता है कि अन्य पात्रों को यह कथनोपकथन नहीं सुनाया जा रहा है। त्रिपाताककर की मुद्रा बनाने के लिए हाथ के पंजे की सभी अँगुलियों को ऊँची रखकर अनामिका को बीच में से अन्दर की तरफ मोड़ लिया जाता है। इस मुद्रा से अन्य पात्रों के अपवारण की सूचना दर्शकों तक पहुँच जाती है।

9.2.5 अपवारित

जब मंच पर उपस्थित पात्रों में से कोई पात्र अन्य पात्र की किसी गुप्त बात को कहना चाहता है तो वह उस पात्र की ओर से मुँह फेरकर उस गुप्त बात को कहता है। इसे अपवारित कहते हैं। इससे यह जताया जाता है कि उस पात्र को यह बात नहीं सुनायी जा रही है। जैसा कि धनंजय कहते हैं–

''रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्त्यापवारितम्''

अर्थात् घूमकर के मंच पर उपस्थित अन्य पात्र की किसी रहस्य वाली गुप्त बात को कहना अपवारित है और यह बात उस पात्र को सुनाना अभीष्ट नहीं है। यह स्पश्ट करते हुए धनिक ने कहा है–

''परावृत्त्यान्यस्य रहस्यकथनमपवारितमिति''

9.2.6 आकाशभाषित

दशरूपकम् के प्रथम प्रकाश में ही धनंजय ने आकाश भाषित को भी परिभाषित किया है। इसमें केवल एक पात्र मंच पर रहता है। वह आकाश की ओर मुँह करके 'क्या कह रहे हो' इस तरह संवाद बोलता है जबकि दूसरी ओर कोई पात्र नहीं होता है अर्थात् वह बिना किसी दूसरे पात्र के कुछ कहने पर भी स्वयं ही इस तरह के प्रश्न वाचक वाक्य द्वारा कथनोपकथन करता रहता है। यह आकाशभाषित कहलाता है। जैसा कि धनंजय आकाशभाषित को परिभाषित करते हुए कहते हैं–

''किं ब्रवीश्येवमित्यादि विना पात्रं ब्रवीति यत्।
श्रुत्वेवानुक्तमप्येकस्तत्स्यादाकाशभाषितम्।।''

इसका प्रयोग एक पात्र वाले रूपकभेद भाण में बहुतायत में पाया जाता है। एकल अभिनय अर्थात् मोनो एक्टिंग में भी इसका प्रयोग देखा जा सकता है।

9.3 सारांष

'नाट्यसंवाद के प्रकार – सर्वश्राव्य या प्रकाश, अश्राव्य या स्वगत, नियत श्राव्य– जनान्तिक, अपवारित, आकाशभाषित' नामक इस इकाई में आपने नाट्य संवाद के प्रकारों को जानने हेतु अध्ययन किया। मंच पर कथनोपकथन के द्वारा कथावस्तु की सटीक अभिव्यक्ति हेतु ये प्रकार अत्यन्त उपयोगी हैं। मंच पर उपस्थित पात्रों के लिए श्रवणीय होने या न होने की दृष्टि से ये प्रकार निरूपित किये गये हैं। नाट्य के दर्शकों के लिए तो सभी संवाद श्रवणीय होते हैं, यह अवश्य ध्यान रखा जाना चाहिए। जो कथावस्तु मंच पर उपस्थित सभी पात्र के लिए श्रवणीय है, वह सर्वश्राव्य है और प्रकाश भी कहलाती है। कोई पात्र मंच पर उपस्थित अन्य पात्रों को न सुनाकर अपने आप से ही मानो बात कर रहा हो तो उसके संवाद को स्वगत कहते हैं। कुछ निश्चित पात्रों के लिए श्रवणीय कथावस्तु नियतश्राव्य है। जनान्तिक और अपवारित भेद से यह दो प्रकार की है। कोई अकेला पात्र मंच पर आकाश की ओर मुँह करके 'क्या कह रहे हो' – इस तरह प्रश्न उठाकर स्वयं ही उत्तर देता हुआ कथा को आगे बढ़ाता है, वह आकाशभाषित कहलाता है।

इस प्रकार आपने नाट्य संवाद के प्रकारों के बारे में जाना। साथ ही आकाशभाषित से भी आपका परिचय हुआ। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप नाट्य संवाद के प्रकारों को परिभाषित कर सकेंगे। आकाशभाषित का विवेचन कर सकेंगे।

9.4 शब्दावली

नाट्य – चार प्रकार के अभिनय द्वारा प्राचीन राम आदि की अवस्थाओं का अनुकरण।

संवाद – कथनोपकथन।

प्रकार – भेद।

सर्वश्राव्य – सबको सुनाने योग्य।

अश्राव्य – जो अन्य पात्रों को सुनाने योग्य नहीं है।

स्वगत – अपने आप से किया जाने वाला संवाद।

नियतश्राव्य – निर्धारित पात्रों को सुनाने योग्य

जनान्तिक – त्रिपताककर की मुद्रा बनाकर किया जाने वाला कथनोपकथन।

अपवारित – घूमकर अन्य पात्र के रहस्य को बतलाना।

आकाशभाषित – आकाश की ओर मुँह करके 'क्या कह रहे हो' के प्रश्न वाचक संवाद द्वारा कथनोपकथन।

9.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, पुनर्मुद्रण 2017 ई.।

2. दशरूपक, धनंजय, डॉ. भोलाशंकर व्यास, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, पुनर्मुद्रित सं. 2000 ई.।

9.6 बोध प्रश्न

1. सर्वश्राव्य पर टिप्पणी लिखिए।
2. स्वगत को समझाइए।
3. नियतश्राव्य किसे कहते हैं?
4. जनान्तिक को परिभाषित कीजिए।
5. अपवारित का लक्षण लिखिए।
6. आकाशभाषित किसे कहते हैं? इसका प्रयोग कहाँ होता है?
7. नाट्य संवाद के प्रकारों का विवेचन कीजिए।
8. जनान्तिक व अपवारित में क्या अन्तर है? समझाइए।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 10 नायक, नायिका और अन्य पात्र

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 नायक परिभाषा तथा भेद, नायिका परिभाषा तथा भेद, सूत्रधार, पारिपार्श्विक, विदूषक, कंचुकी, प्रतिनायक।

10.3 सारांश

10.4 शब्दावली

10.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

10.6 बोध प्रश्न

10.0 उद्देश्य

नायक आदि पात्रों की परिभाषा तथा भेद से सम्बन्धित इस इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप :

- नायक के स्वरूप को जान सकेंगे।
- नायक के भेदों से परिचित हो सकेंगे।
- नायिका की विशेषताओं का वर्णन करने में समर्थ हो सकेंगे।
- नायिका के भेदों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- सूत्रधार के बारे में जानकारी हो सकेगी।
- पारिपार्श्विक की भूमिका को पहचान सकेंगे।
- विदूषक पात्र से परिचित हो सकेंगे।
- कंचुकी का लक्षण समझ सकेंगे।
- प्रतिनायक की भूमिका को जान सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

नाट्य के मंच पर प्रदर्शन के लिए पात्रों की अनिवार्य रूप से आवश्यकता होती है। नाट्य के तीन महत्त्वपूर्ण तत्त्व वस्तु, नेता और रस हैं। इनमें से नेता से आशय पात्रों से है। नाट्य में कई पात्र भूमिकाओं का निर्वाह करते हैं। इनमें से नायक और नायिका प्रमुख होते हैं, शेष पात्र गौण रूप में रहते हैं। नायक और नायिकाओं के भी कई प्रकार होते हैं। इनके अतिरिक्त रंगमंच के आरम्भ और संचालन में भूमिका का निर्वाह करने वाला महत्त्वपूर्ण पात्र सूत्रधार होता है। इन पात्रों की भूमिकाएँ छोटी या बड़ी हो सकती हैं किन्तु वे आवश्यक व महत्त्वपूर्ण होती हैं। ऐसे पात्रों में विदूषक, कंचुकी आदि आते हैं। प्रतिनायक की भी भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहती है। इन पात्रों के लिए नाट्यशास्त्र में विधान किये गये हैं। इन विधानों के अनुरूप ये पात्र

अपनी भूमिका का निर्वाह करते हैं। नाट्य के प्रकारों की आवश्यकता के अनुसार नायक के भेदों की आवश्यकता होती है। नायक के चार भेदों का निरूपण नाट्यशास्त्र में किया गया है। ये चार भेद हैं– धीरोदात्त, धीरप्रशान्त, धीरललित और धीरोद्धत। इसी प्रकार नायिका के भी भेदों का निरूपण किया गया है। नायिकाओं के सामान्य गुण नायक के समान ही होते हैं। नायिकाएँ तीन प्रकार की होती हैं।

उपर्युक्त नायक आदि पात्रों की परिभाषाओं और प्रकारों को आपके अध्ययन के लिए इस इकाई में प्रस्तुत किया जा रहा है।

10.2 नायक परिभाषा तथा भेद, नायिका परिभाषा तथा भेद, सूत्रधार, पारिपार्श्विक, विदूषक, कंचुकी, प्रतिनायक

नाट्य में पात्रों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, यह स्पष्ट ही है। इसी कारण भरत इनके विषय में विस्तार से निरूपण करते हैं। पात्रों के द्वारा ही सम्पूर्ण कथानक दर्शकों तक पहुँचता है। इसलिए पात्रों के चित्रण में विशेष सावधानी बरतना अपेक्षित होता है। पात्रों में मुख्य रूप से पुरुष तथा स्त्री पात्र होते हैं। इन पात्रों को भी प्रकृति के आधार पर तीन प्रकारों में रखा गया है– उत्तम, मध्यम और अधम। जैसा कि भरत कहते हैं–

''समासतस्तु प्रकृतिस्त्रिविधा परिकीर्तिता।
स्त्रीणां च पुरुषाणां च उत्तमा मध्यमाधमाः।।'' नाट्यषास्त्र 24.2

इनमें से प्रत्येक के विषय में वे विस्तार से बतलाते हैं। उत्तम प्रकृति के वे माने जाते हैं जो जितेन्द्रिय, ज्ञानवान्, कई कलाओं के ज्ञाता, दक्ष, दीनों के सान्त्वनाकर्ता, कई शास्त्रों के ज्ञाता, गम्भीर, उदार, धीर और त्यागी हों। जैसा कि भरत कहते हैं–

''जितेन्द्रिया ज्ञानवती नानाशिल्पविचक्षणा।
दक्षिणा भोगदक्षाऽथ दीनानां परिसान्त्विनी।।
नानाशास्त्रार्थसम्पन्ना गम्भीर्यौदार्यशालिनी।
धैर्यत्यागगुणोपेता ज्ञेया प्रकृतिरुत्तमा।।'' नाट्यशास्त्र 24.3,4

वहीं मध्यम प्रकृति के पात्र वे कहे जाएंगे जो लोक व्यवहार में दक्ष हों, कलाओं और शिल्पों को जानने वाले हों, ज्ञानसम्पन्न और मधुर स्वभाव वाले हों। जैसा कि भरत कहते हैं–

''लोकोपचारचतुरा शिल्पशास्त्रविशारदा।
विज्ञानमाधुर्ययुता मध्यमा प्रकृतिः स्मृता।।'' नाट्यशास्त्र 24.5

अधम प्रकृति के पात्र वे होते हैं जो वार्तालाप में कठोर, दुष्ट स्वभाव वाले, क्रोधी, मित्रों का अहित करने वाले, उपकारों को न मानने वाले, स्त्रियों में आसक्ति रखने वाले, कलह करने वाले, पापकर्मों को करने वाले, दूसरों के धन को हरने वाले होते हैं।

जिस प्रकार पुरुषों के उपर्युक्त तीन प्रकार निरूपित किये गये हैं उसी प्रकार स्त्रियों के भी तीन प्रकार बताये गये हैं।

इन नायक नायिकाओं के अतिरिक्त अन्य पात्र भी कथावस्तु की प्रस्तुति में आवश्यक भूमिकाओं का निर्वहन करते हैं, जैसे– सूत्रधार, पारिपार्श्विक, कंचुकी, विदूषक, खलनायक आदि।

अब आपके अध्ययन के लिए नायक आदि पात्रों और इनके प्रकारों के साथ ही अन्य महत्त्वपूर्ण पात्रों को प्रस्तुत किया जा रहा है। सर्वप्रथम नायक का अध्ययन कीजिए।

10.2.1 नायक परिभाषा तथा भेद

भारतीय मनीषा की प्रवृत्ति आरम्भ से ही असत् से सत् की ओर रही है। वेद के 'असतो मा सद्गमय' उपदेश के अनुसार सत् के प्रति आग्रह निम्नलिखित शब्दों में देखा जा सकता है– सज्जन, सद्गुण, सदाचार आदि। सद्गुणों की महिमा से युक्त व्यक्तित्व लोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। साहित्य में व्यक्तित्व के आदर्श या मानदण्ड नायक के रूप में व्यक्त किये हैं। नायक विनम्र, मधुर, त्यागी, दक्ष, प्रिय बोलने वाला, जनता को प्रसन्न रखने वाला, पवित्र, वाक्पटु, प्रतिष्ठित वंश में उत्पन्न, सुस्थिर मन वाला, युवा अवस्था वाला होता है। बुद्धि, उत्साह, स्मृति, प्रज्ञा, कला तथा मान से युक्त, शूर, दृढ, तेजस्वी, शास्त्रज्ञाता तथा धार्मिक होता है।

''नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा।।
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः।।'' दशरूपकम् 2.1–2

इन गुणों का प्रयोगपक्ष विभिन्न काव्यों में निबद्ध नायक आदि पात्रों में दिखायी देता है। जैसे राम, कृष्ण, बुद्ध आदि।

नायक के चार प्रकार नाट्यशास्त्र में माने गये हैं। वे हैं– धीरोदात्त, धीरप्रशान्त, धीरललित और धीरोद्धत। अब इन भेदों को प्रस्तुत किया जा रहा है।

10.2.1.1 धीरोदात्त नायक

क्रोध, शोक आदि जिसके अन्तःकरण का विकृत नहीं कर पाते हैं ऐसे महासत्त्व, अत्यन्त गम्भीर, क्षमाशील, अपनी प्रशंसा स्वयं न करने के कारण अविकत्थन, स्थिर स्वभाव वाला, विनय सम्पन्न होने से छिपे हुए अहंकार वाला और जिस कार्य को करने की ठान ले उसे पूरा करने वाला ऐसा दृढव्रत नायक धीरोदात्त नायक कहलाता है। जैसा कि धनंजय कहते हैं–

''महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः।
स्थिरो निगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढव्रतः।।'' दशरूपकम् 2.4,5

धीरोदात्त नायक का उदाहरण है– राम।

10.2.1.2 धीरप्रशान्त नायक

जो नायक के सामान्य गुणों विनय आदि से युक्त हो तथा ब्राह्मण, वणिक्, मन्त्री का पुत्र इत्यादि हो, वह धीरप्रशान्त नायक कहलाता है। जैसा कि धनंजय कहते हैं–

सामान्यगुणयुक्तस्तु धीरशान्तो द्विजादिकः।'' दशरूपकम् 2.4

धीरप्रशान्त नायक का उदाहरण है– मृच्छकटिकम् प्रकरण का नायक चारुदत्त, मालतीमाधवम् का नायक माधव।

10.2.1.3 धीरललित नायक

धीरललित कोटि का नायक पूरी तरह से निश्चिन्त रहता है। वह कलाओं में आसक्त रहने वाला, सुखी और कोमल स्वभाव वाला होता है। जैसा कि धनंजय कहते हैं–

''निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः।''

इस नायक के योगक्षेम की सारी व्यवस्था मन्त्रियों के हाथों में होती है। इसी कारण यह निश्चिन्त रहता है। इसमें श्रृंगार रस की प्रधानता होती है। धीरललित नायक का उदाहरण है– रत्नावली नाटिका का नायक उदयन।

10.2.1.4 धीरोद्धत नायक

इस नायक में घमण्ड और ईर्ष्या पाये जाते हैं। इसके व्यवहार में माया और कपट पाये जाते हैं। यह अहंकारी, चंचल स्वभाव वाला, क्रोधी और अत्मप्रशंसा करने वाला होता है। जैसा कि धनंजय कहते हैं–

''दर्पमात्सर्यभूयिष्ठो मायाच्छद्मपरायणः।
धीरोद्धतस्त्वहङ्कारी चलश्चण्डो विकत्थनः।।'' दशरूपकम् 2.5,6

धीरोद्धत नायक का उदाहरण है वेणीसंहार का नायक भीम।

इस प्रकार आपने नायक के लक्षण तथा उसके भेदों को जान लिया है। अब नायिका के बारे में जानेंगे।

10.2.2 नायिका परिभाषा तथा भेद

नायक में रहने वाले सामान्य गुणों विनय आदि से नायिका भी युक्त होती है अर्थात् नायक के जो विनय आदि सामान्य गुण कहे गये हैं वे नायिका में भी होने चाहिए। नायिका के तीन भेद बताये गये हैं– स्वकीया, अन्या (परकीया) और साधारण स्त्री। जैसा कि धनंजय कहते हैं–

''स्वान्या साधारणस्त्रीति तद्गुणा नायिका त्रिधा।'' दशरूपकम् 2.15

10.2.2.1 स्वकीया नायिका

स्वकीया नायिका का लक्षण करते हुए धनंजय कहते हैं–

''मुग्धा मध्या प्रगल्भेति स्वीयाशीलार्जवादियुक्।'' दशरूपकम् 2.15

अर्थात् स्वकीया नायिका शील सम्पन्न, सरल स्वभाव वाली और लज्जाशील होती है। इसी लक्षण को अधिक स्पष्ट करते हुए धनिक कहते हैं कि वह अच्छे चरित्र वाली, पतिव्रता, कुटिलता से रहित, लज्जाशीला, पति के प्रति व्यवहार में कुशल होती है। स्वकीया नायिका का उदाहरण है उत्तररामचरितम् नाटक की नायिका सीता।

इस स्वकीया नायिका के तीन भेद होते हैं– मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा।

10.2.2.2 अन्या (परकीया) नायिका

नायिका का प्रथम भेद बताने के बाद अब दूसरे भेद परकीया नायिका को बतलाते हैं। अन्य स्त्री दो प्रकार की हो सकती है– या तो वह किसी की अविवाहित पुत्री हो या

किसी अन्य की विवाहिता पत्नी हो। नाट्यशास्त्र के नियमानुसार नाटक आदि में अन्य व्यक्ति की विवाहिता पत्नी का मुख्य रस के आलम्बन के रूप में वर्णन कभी नहीं करना चाहिए। अविवाहिता कन्या के प्रति अनुराग का वर्णन ऐच्छिक होता है। वह प्रधान रस का भी अंग बन सकता है और अप्रधान रस का भी। इसका आशय है कि कन्या के प्रति अनुराग का वर्णन नाटक में भी किया जा सकता है। जैसा कि धनंजय कहते हैं–

''अन्यस्त्री कन्यकोढा च नान्योढाऽङ्गिरसे क्वचित्।
कन्यानुरागमिच्छातः कुर्यादङ्गाङ्गिसंश्रयम्।।'' दशरूपकम् 2.20

10.2.2.3 साधारण स्त्री नायिका

यह नायिका का तीसरा प्रकार है। यह कलाओं में पारंगत, स्वभाव से प्रगल्भ, व्यवहार में धूर्त गणिका (वेश्या) होती है। जैसा कि धनंजय ने कहा है–

''साधारणस्त्री गणिका कलाप्रागल्भ्यधौर्त्ययुक्।'' दशरूपकम् 2.21

साधारण स्त्री नायिका का उदाहरण है मृच्छकटिकम् प्रकरण की नायिका वसन्तसेना।

इन नायिकाओं के भी पुनः कई प्रभेद होते हैं। इस प्रकार नायक– नायिका के बारे में पढ़ने के बाद अब आप अन्य पात्रों के विषय में अध्ययन करेंगे।

10.2.3 सूत्रधार

नाट्य के रंगमंच पर मंचन में सूत्रधार का दायित्त्व महत्त्वपूर्ण होता है इसलिए भरत मुनि उसके बारे में विस्तार से विवेचन करते हैं। सम्पूर्ण मंचन का वह व्यवस्थापक होता है इसलिए उसे नाट्य के मंचन से संबंधित विभिन्न पक्षों की अच्छी समझ होनी चाहिए। वह संभाषण की प्रक्रिया का, ताल–विधान का, स्वरों का, वाद्यों के वादन के सिद्धान्तों का भी ज्ञाता होना चाहिए। वह चारों प्रकार के वाद्यों को बजाने में कुशल होता है। वह अनेक कर्मों का ज्ञाता, नीतिशास्त्र का ज्ञाता, वेशोपचार में निपुण, कामशास्त्र का ज्ञाता, रसों तथा भावों का ज्ञाता, नाट्य प्रयोग करने में पारंगत, कई शिल्पों, कलाओं का ज्ञाता, पदों और छन्दों के विधानों का ज्ञाता, प्रयोग से संबंधित सभी शास्त्रों में कुशल, ग्रह–नक्षत्रों का ज्ञाता, दैहिक गतियों का ज्ञाता, विभिन्न देशों के आचार, व्यवहार, वेशभूषा आदि का ज्ञाता, राजवंशों की जानकारी रखने वाला, शास्त्रों में बताये गये आचारों और कार्यों का श्रवण–बोध पूर्वक व्यवहार कर दूसरों को सिखाने या उपदेश करने में समर्थ होता है। ऐसा वह नाट्यप्रयोग संबंधी विविध शास्त्रों का पारंगत प्रयोक्ता नाट्याचार्य या सूत्रधार कहलाता है। जैसा कि भरत कहते हैं–

''चतुरातोद्यकुशलः नानाकर्मसु शिक्षितः।
ननापाषण्डकार्यज्ञो नीतिशास्त्रार्थतत्त्ववित्।।
वेशोपचारनिपुणः कामशास्त्रविचक्षणः।
नानागतिप्रचारज्ञो रसभावविशारदः।।
नाट्यप्रयोगकुशलो नानाशिल्पसमन्वितः।
पदच्छन्दोविधानज्ञः सर्वशास्त्रविचक्षणः।।
ग्रहनक्षत्रतत्त्वज्ञो देहव्यापारपण्डितः।

पृथिवीद्वीपवर्षाणां पर्वतानां जनस्य च।।
प्रमाणाचरितज्ञश्च राजवंशप्रसूतिवित्।
श्रोता शास्त्रार्थकार्याणां श्रुत्वा चैवावधारकः।।
अवधार्य प्रयोक्ता च शक्तश्चैवोपदेशने।
एवं गुणस्तथाचार्यः सूत्रधारो विधीयते।।'' नाट्यशास्त्र 35.66–71

इनके अतिरिक्त भी कुछ अन्य सहज गुण सूत्रधार में होने चाहिए। वह स्मृति और बुद्धि से युक्त, धीर स्वभाव वाला, उदार प्रकृति वाला, काव्यों को जानने वाला, रोग रहित, मृदु भाषी, प्रिय संभाषण करने वाला, क्रोध न करने वाला, सत्यवादी, कार्य में दक्ष, लोभ रहित होता है।

10.2.4 पारिपार्श्विक

यह मध्यम प्रकृति का पात्र होता है। इसमें सूत्रधार की अपेक्षा गुणों में न्यूनता होती है। यह सूत्रधार का सहायक होता है। इसे पारिपार्श्विक कहा जाता है। भरतमुनि कहते हैं–

''सूत्रधारगुणैश्चैव किंचिदूनैः समन्वितः।
मध्यमप्रकृतिस्तज्ज्ञैर्विज्ञेयः पारिपार्श्विकः।।'' नाट्यशास्त्र 35.74

10.2.5 विदूषक

नाट्य में हास्य रस का वातावरण निर्मित करने वाला पात्र विदूषक कहलाता है। जैसा कि धनंजय ने कहा है–

''हास्यकृद् विदूषकः''

इसकी शारीरिक विशेषताओं का निरूपण भरत मुनि करते हैं। यह ठिगने कद का, लम्बे–लम्बे दाँतों वाला, कूबड़ से युक्त, इधर से उधर बातों को कह देने वाला, बदसूरत, गंजा, भूरी या पीली आँखों वाला होता है। जैसा कि भरत कहते हैं–

''वामनो दन्तुरः कुब्जो द्विजिह्वो विकृताननः।
खलतिः पिङ्गलाक्षश्च स विधेयो विदूषकः।।'' नाट्यशास्त्र 35.79

जैसे अभिज्ञानशाकुन्तलम् में माधव्य विदूषक है।

10.2.6 कंचुकी

कंचुकी को परिभाषित करते हुए भरत मुनि कहते हैं कि जो विद्याओं का ज्ञाता, ईमानदार, काम दोष से रहित, ज्ञान और विज्ञान में कुशल हो, वह कंचुकी कहलाता है। राजा को अपने राजकीय कार्यों के लिए इधर–उधर भेजने में इन कंचुकियों का उपयोग करना चाहिए। इनमें से वर्षवर कोटि का कंचुकी प्रेमसन्देश आदि को ले जाने का कार्य करता है। औपस्थानिक और निर्मुण्ड की नियुक्ति स्त्रियों के प्रेषण कार्य के लिए होती है। इसी तरह राजकुमारियों तथा बालिकाओं के संरक्षण का कार्य भी ये किया करते हैं। राजाओं के अन्तःपुर वर्णन में कंचुकी प्रायः मंच पर दृष्टिगोचर होता है। द्रष्टव्य–

''ये विद्यासत्यसम्पन्नाः कामदोषविवर्जिताः।

ज्ञानविज्ञानकुशलाः कंचुकीयास्तु ते स्मृताः।।
प्रेषणे चार्थसंयुक्ते कंचुकीयान्नियोजयेत्।
तथा वर्षवराश्चैव कामचारेषु योजयेत्।।
औपस्थयिकनिर्मुण्डान् स्त्रीणां प्रेषणकर्मणि।
रक्षणे च कुमारीणां बालिकानां च योजयेत्।।'' नाट्यशास्त्र 34.75–77

जैसे उत्तररामचरितम् में गृष्टि कंचुकी है।

10.2.7 प्रतिनायक

कथा के नायक का शत्रु प्रतिनायक होता है। वह नायक की फलप्राप्ति में विघ्न उपस्थित कर देता है। इसे खलनायक भी कह सकते हैं। यह लोभी, धीरोद्धत, पाप कर्म करने वाला तथा व्यसनी होता है। जैसा कि धनंजय ने कहा है–

''लुब्धो धीरोद्धतः स्तब्धः पापकृद् व्यसनी रिपुः'' दशरूपकम् 2.9

जैसे राम का प्रतिनायक रावण तथा कृष्ण का प्रतिनायक शिशुपाल है।

10.3 सारांश

नायक भारतीय परम्परा में प्रचलित प्रायः सभी सद्गुणों से युक्त होता है। वह प्रकृति के आधार पर चार प्रकार का माना गया है– धीरोदात्त, धीरप्रशान्त, धीरललित और धीरोद्धत। रूपक के प्रकारों में से नाटक में नायक धीरोदात्त कोटि का ही होता है। नायक के ही सामान्य गुणों से युक्त नायिका भी होती है। वह तीन प्रकार की मानी गयी है– स्वकीया, परकीया और साधारण स्त्री। इनके अतिरिक्त अन्य पात्र भी कथावस्तु को आगे बढ़ाने में सहायक होते हैं। सूत्रधार पूरे रंगमंच का संचालक और व्यवस्थापक होता है इसलिए भरतमुनि ने सूत्रधार के विषय में विस्तार से विवेचन किया है। सूत्रधार का सहायक पात्र पारिपार्श्विक होता है। नाट्य में हास्य का संचार करने वाला पात्र विदूषक होता है। राजा के अन्तःपुर में रहकर विभिन्न कार्यों को करने वाला पात्र कंचुकी होता है। इनके अतिरिक्त नायक का शत्रु और विरोधी पात्र प्रतिनायक या खलनायक होता है। इस प्रकार आपने नाट्य में होने वाले प्रमुख पात्रों के बारे में जाना। साथ ही नायक और नायिका के भेदों से भी आपका परिचय हुआ। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप नाट्य के प्रमुख पात्रों को परिभाषित कर सकेंगे जिनमें नायक और प्रतिनायक भी सम्मिलित हैं।

10.4 शब्दावली

नाट्य – चार प्रकार के अभिनय द्वारा प्राचीन राम आदि की अवस्थाओं का अनुकरण।

नायक – कथावस्तु को बढ़ाने वाला प्रमुख पात्र, फलप्राप्ति का अधिकारी।

धीर – धैर्ययुक्त।

सूत्रधार – रंगमंच का संचालक और व्यवस्थापक।

पारिपार्श्विक – नाटक के आरम्भ में मंच पर सूत्रधार का सहायक पात्र।

विदूषक – हास्य का संचार करने वाला पात्र।

कंचुकी – राजा के अन्तःपुर में कार्यरत पात्र।

प्रतिनायक – नायक का विरोधी, शत्रु।

स्वकीया – नायक की पत्नी, शील आदि गुण युक्त।

अन्या नायिका – अविवाहित कन्या, अन्य की परिणीता स्त्री नायिका

साधारण स्त्री – गणिका नायिका

10.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, पुनर्मुद्रण 2017 ई.।
2. दशरूपक, धनंजय, डॉ. भोलाशंकर व्यास, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, पुनर्मुद्रित सं. 2000 ई.।

10.6 बोध प्रश्न

1. नायक किसे कहते हैं?
2. धीरोदात्त नायक को उदाहरण सहित समझाइए।
3. धीरप्रशान्त नायक को उदाहरण सहित समझाइए।
4. धीरललित नायक को उदाहरण सहित समझाइए।
5. धीरोद्धत नायक को उदाहरण सहित समझाइए।
6. नायिका किसे कहते हैं?
7. नायिका के भेदों को समझाइए।
8. सूत्रधार की विशेषताएँ लिखिए।
9. पारिपार्श्विक से आप क्या समझते हैं?
10. विदूषक को उदाहरण सहित समझाइए।
11. कंचुकी पर टिप्पणी लिखिए।
12. प्रतिनायक का उदाहरण सहित विवेचन कीजिए।

इकाई 11 रस तथा भाव

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 रस किसे कहते हैं? यह बोध प्राप्त करना।

11.2 रस की निष्पत्ति कैसे होती है? यह ज्ञान करना।

11.3 रस के भेदों का ज्ञान प्राप्त करना।

11.4 भाव का परिचय प्राप्त करना।

11.5 विभाव को जानना।

11.6 अनुभाव का परिचय प्राप्त करना।

11.7 सात्त्विकभाव का परिचय प्राप्त करना।

11.8 स्थायीभाव का परिचय प्राप्त करना।

11.0 उद्देश्य

रस तथा भाव के वर्णनों की प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप :

- रस किसे कहते हैं, जान सकेंगें।
- रस की निष्पत्ति कैसे होती है? इसका वर्णन कर सकेंगें।
- रस के भेदों का उल्लेख कर सकेंगें।
- भाव का परिचय बता सकेंगे।
- विभाव की व्याख्या कर पायेंगे।
- अनुभाव का परिचय दे सकेंगे।
- सात्त्विकभाव का परिचय बता सकेंगे
- स्थायीभाव का उल्लेख कर सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

भारतीय वाङ्मय में नाट्यशास्त्र के अलावा अन्य काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों का अपने अपने कालखण्ड में निर्माण होता रहा है। जिनका उद्देश्य नाट्यशास्त्र में वर्णित रस, भाव, विभाव, अनुभाव, व्यभिचारिभाव और सात्त्विक भावों के साथ अन्य काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों का विमर्शात्मक विकास करना रहा है जो कि हमें विविध ग्रन्थों के अध्ययन से प्राप्त होता है। प्रत्येक मनुष्य या प्राणि मात्र के हृदय में विविध प्रकार के भाव सुषुप्तावस्था में विद्यमान रहते हैं और जब लोक में जिस प्रकार का अनुकूलत्व उन्हें प्राप्त होता है वे तदनुसार प्रकट होते हैं। उन भावों का अत्यधिक चिन्तन शास्त्रकारों के द्वारा किया गया तब वे भाव अनगिनत होते हुए भी कुछ संख्या में समाहित हो गये और और उन्हीं के अनुसार विविध प्रकार के रसों का निर्णय किया गया है। किसी मनुष्य को दुःख का आघात होता है तब वह क्रन्दन करता है उसकी आंखों से आँसू

आ जाते हैं तब उसकी दयनीय स्थिति निर्मित होती है और वह करुण रस से संयुक्त है तथा उसका वह आस्वादन हृदय से कर रहा है ऐसा जाना जाता है। उसके रोने की स्थिति से वह करुण रस में स्थित है ऐसा आभास हमें होता है, यही लोक में रस कहा गया है। इस रस की क्या परिभाषा है, यह कैसे उत्पन्न होता है, ये कितनी संख्या में है, जिनसे ये पहचाने जाते हैं वे तत्त्व कौन हैं, क्या हैं, कितने हैं, इन सबके सहायक तत्त्व और रस की अनुभूति के बाद के तत्त्व किसे कहते हैं और वे कौन हैं, उन सबका वर्णन हम इस इकाई में करेंगे।

11.2 रस : परिभाषा तथा स्वरूप

विभाव, अनुभाव, सात्त्विक और व्यभिचारि साधक भावों के माध्यम से जब साध्य स्थायी भाव को इस प्रकार निर्मित कर देना जिसका जन सामान्य दर्शकों के द्वारा हृदय से आस्वादन लिया जा सके, अनुभूत किया जा सके उसको रस कहते है। रस का जिनके द्वारा आस्वादन किया जाता है वे जन रसिक कहे जाते हैं। जब नायक और नायिका एकान्त स्थल में स्थित होते हैं और दोनों के द्वारा जब एक दूसरे का आलिंगन किया जाता है तथा चुम्बन आदि क्रियाएं की जाती हैं तब दर्शक द्वारा श्रृंगार रस के अन्तर्गत सम्भोग श्रृंगार रस का आस्वादन किया जाता है। इसी प्रकार जब नायक और नायिका जब एक दूसरे से दूर होते हैं और एक दूसरे का विरह संताप सहन करते हैं तब उसी सामाजिक के द्वारा श्रृंगार रस के द्वितीय भेद विप्रलभ्भ श्रृंगार रस का आस्वादन लिया जाता है। यथा –

''विभावैरनुभावैष्च सात्त्विकैर्व्यभिचारिभिः।
आनीयमानः स्वाद्यत्वं स्थायी भावो रसः स्मृतः।।''

(दशरूपक, 4/1)

और भी –

''विभावेनानुभावेन व्यक्तः संचारिणा तथा।
रसतामेति रत्यादिः स्थायी भावः सचेतसाम्।।''

(साहित्यदर्पण, 3/1)

आचार्य विश्वनाथ रस के स्वरूप का विमर्श प्रस्तुत करते हैं इसके अन्तर्गत वे कहते हैं – सत्त्व की अधिकता होने के कारण वह रस अखण्डस्वरूप है, रस नित्य स्वयं से प्रकाशित होता है, वह रस सकल सुखों का आकर होने के कारण आनन्दमय होता है और वह चिन्मय रूप में प्रतीत होता है, अन्य जानने योग्य पदार्थ के स्पर्श से शून्य होता है, ब्रह्मज्ञान के आनन्द का आस्वादन कराने वाले उस तत्त्व का सहोदर अर्थात् एक ही माता से उत्पन्न भाई के समान है, इतना ही नहीं वह रस इस लोक से भिन्न किसी अन्य लोक का तत्त्व है जो सहृदयों में चमत्कारस्वरूप आन्नद को प्रकट करने वाला जीवन प्राण है जिसका दर्शक या सामाजिक पुण्यशालियों के द्वारा अपने हृदय में जिस रस का जैसा स्वरूप है उस स्वरूप के समान एकत्व होकर के उस रस का आस्वादन लिया जाता है। यथा –

''सत्त्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशानन्दचिन्मयः।
वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः।।
लोकोत्तरचमत्कारप्राणः कैश्चित् प्रमातृभिः।
स्वाकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रसः।।''

(साहित्यदर्पण, 3/2,3)

11.3 रस निष्पत्ति के उपादान

रस की निष्पत्ति के विषय में आचार्य भरत मुनि के द्वारा सर्वप्रथम बतलाया गया है कि काव्यगत रस की अनुभूति आदि में सहायक तत्त्व विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव इन तीनों के संयोग होने पर रस की निष्पत्ति होती है। जैसा कि भरतमुनि ने प्रसिद्ध रस सूत्र में निरूपित किया है– ''**विभावानुभावव्यभिचारिभावसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः**''। दशरूपक की टीका में धनिक ने रस की उत्पत्ति के विषय में षट्साहस्रीकार के मत का उद्धरण देकर कहा है विभाव जब सामान्य गुणों से युक्त होता है तब वह रस की निष्पत्ति करता है यथा – ''**एभ्यश्च सामान्यगुणयोगेन रसा निष्पद्यन्ते**''। इस प्रकार रस निष्पत्ति में विभाव, अनुभाव और व्यभिचारिभावों को उपादान के रूप में माना जाता है। इसी मत को आचार्य मम्मट के द्वारा भी उद्धृत किया गया है – ''**व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः**''।।

11.4 रस भेद

आचार्य भरत मुनि ने सर्वप्रथम अपने ग्रन्थ में रस के आठ भेदों को स्वीकार किया है। इसके अलावा भी आचार्य अभिवन गुप्त के द्वारा नौवें रस की कल्पना की गई है। इसी क्रम में आचार्य मम्मट ने भी सर्वप्रथम आठ रसों को रखकर अन्त में नौवें शान्त रस को बतलाया है। आचार्य विश्वनाथ भी इन्हीं नौ रसों का वर्णन करते हैं। महाकवि भवभूति एक मात्र करुण को ही प्रधान तथा एक मात्र रस के रूप में स्वीकार करते हैं। महाराज भोजराज अपने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ श्रृंगारप्रकाश में श्रृंगार रस को ही मूल रस के रूप में स्वीकार करते है। आचार्य विश्वनाथ अद्‌भुत रस को ही सभी रसों का मूल स्वरूप स्वीकार करते हैं और अभिनव गुप्त शान्त रस सभी रसों का मूल है, ऐसा स्वीकार करते हैं। इन सभी रसों के देवता, वर्ण, स्थायी भावों, उदाहरणों और रसों के आन्तरिक भदों का वर्णन प्राप्त होता है। नौ रस इस प्रकार हैं – प्रथम रस शृङ्गार, द्वितीय रस हास्य, तृतीय रस करुण, चतुर्थ रस रौद्र, पंचम रस वीर, षष्ठ रस भयानक, सप्तम रस बीभत्स, अष्टम रस अद्‌भुत और नवम रस शान्त है। इसके अलावा गोस्वामी आदि भक्तकवियों के द्वारा भक्ति रस तथा सूरदास जी के द्वारा वात्सल्य रस को भी स्वीकार किया गया है। यथा –

> **''श्रृंगारहास्यकरुणा रौद्रवीरभयानकाः।**
> **बीभत्साद्‌भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृता।।''**
>
> **(नाट्यशास्त्र, 6/16)**
>
> **''शृङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः।**
> **बीभत्साद्‌भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः।।''**
>
> **(काव्यप्रकाश, 4/29)**
>
> **''शान्तोऽपि नवमो रसः।''**
>
> **(काव्यप्रकाश, 4/44)**

रस	स्थायी भाव	वर्ण	देवता	मूल प्रवृत्तियां
श्रृंगार	रति	श्याम	विष्णु	काम प्रवृत्ति
हास्य	हास	श्वेत	शिव के प्रमथ गण	आमोद
करुण	शोक	कपोत	यम	शरणागति
रौद्र	क्रोध	रक्त	रुद्र	युयुत्सा
वीर	उत्साह	चमकीला सफेद	महेन्द्र	आत्माभिमान
भयानक	भय	काला	काल देव	पलायन या आत्मरक्षा
बीभत्स	जुगुप्सा	नीला	महाकाल	वैराग्य
अद्‌भुत	विस्मय	पीला	ब्रह्म	कौतुहल
शान्त	निर्वेद	पीला	बुद्धदेव	आत्मदीनता
वात्सल्य	स्नेह			पुत्र प्रेम
भक्ति	भगवद् विषयक प्रेम			देव विषयक रति

11.5 भाव : परिभाषा

नाटक आदि में नट के द्वारा रामादि का जो अभिनय प्रस्तुत किया जाता है और उस अभिनय में जो क्रियात्मकता है उस क्रियात्मकत्त्व के द्वारा दर्शक सामाजिकों का हृदय जब उससे एकात्मक हो जाता है तब नायक का जो मानसिक विकार है वह विकार जिस प्रकार से सामाजिकों हृदय में उपस्थित होता है तथा प्रकट स्वरूप में दिखाई देता है उसको ही भाव कहा जाता है। जैसे उत्तररामचरित में राम का पंचवटी में स्थानों को देखकर उन से सम्बन्धित घटनाओं का स्मरण कर दुःखी होना और करुणा प्रकट करना ही भाव है इस दृश्य को देखकर सामाजिकों की आखों में आँसू आ जाना तथा दुखी होना भी भाव है।

सुखदुःखादिकैर्भावैर्भावस्तद्‌भावभावनम्।।

(दशरूपक, 4/4)

''नानाभिनयसम्बन्धान् भावयन्ति रसान् यतः।
तस्माद् भावा अमी प्रोक्ताः स्थायिसंचारिसात्विकाः।।''

(साहित्यदर्पण, 3/181)

11.6 विभाव

''**विभाव इति विज्ञातार्थ इति**'' इस प्रकार दशरूपक में विभाव शब्द की परिभाषात्मक व्युत्पत्ति प्राप्त होती है जिसका अर्थ है विशिष्ट प्रकार से ज्ञान प्राप्त करन ही विभाव है। इस प्रकार नायक के द्वारा किये गये अभिनय को देखकर जो ज्ञान प्राप्त होता है उससे हृदय में भाव उत्पन्न होते हैं उन भावों का आस्वादन करना ही विभाव है। विभाव से रसों के स्थायी भाव परिपुष्ट होते हैं और स्थायी भावों के प्रबल होने से रस

का निर्मित स्वरूप सामाजिक को प्राप्त होता है। विभाव रस का हेतुभूत अंग है। विभाव के दो भेद प्राप्त होते हैं– आलम्बन और उद्दीपन।

> **''ज्ञायमानतया तत्र विभावो भावपोषकृत्।**
> **आलम्बनोद्दीपनत्वप्रभेदेन स च द्विधा।।''**
>
> **(दशरूपक, 4/2)**

उदाहरण के माध्यम से हम इसको समझने का प्रयास करते हैं। शृंगार रस का स्थायी भाव रति है। रति स्थायी भाव को प्रकट करने के लिए नायक और नायिका का जो भ्रूविलास और आलिंगन रूप प्रयत्न है वह कारणस्वरूप उद्योग ही विभाव कहा जाता है। नायिका को देखकर नायक का मन उसके प्रति आकर्षित होता है और नायक उससे मिलन की इच्छा करता है तब नायिका आलम्बन है और उस नायिका के आस – पास प्रकृति निर्मित जो स्थितियाँ है जैसे मनोहर मौसम, ठण्डी हवाओं का चलना, सुन्दर हरयाली आदि अनुकूल स्थिति को प्रकट करने वाले जो तत्त्व हैं वे उद्दीपन विभाव कहे जाते हैं।

11.7 अनुभाव

जब सामाजिक दर्शक गण रस की अनुभूति को प्राप्त कर लेते हैं तब उसके बाद में उत्पन्न उस रस का कार्य ही अनुभाव कहलाता है। रति आदि रसों के जो स्थायी भाव कहे गये हैं उन स्थायी भावों की सूचना जिसके माध्यम से दर्शक को प्राप्त होती है वे तत्त्व अनुभाव कहे जाते हैं। अनुभाव रस का कार्यभूत अंग जाना जाता है। यथा–

> **''अनुभावो विकारस्तु भावसंसूचनात्मकः।।''**
>
> **(दशरूपक, 4/3)**

उदाहरण से इसको समझने का प्रयास करते हैं। देखिए जब रंगस्थल में नायक और नायिका दोनों ही विद्यमान हों और नायिका अपनी भ्रूविलास के माध्यम से नायक को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करती है तथा नायक का आकर्षित होकर उसके पास जाना और दोनों का आलिंगन करना दर्शक के द्वारा जब यह दृश्य देखा जाता है तब रति स्थायी भाव की प्रतीति होती है। उसके बाद का जो अनुभव दर्शक के द्वारा अनुभूत किया जाता है, वह अनुभाव है।

11.8 सात्त्विक भाव

''**अवहितं मनः सत्त्वं तत्प्रयोजनं हेतुरस्येति सात्त्विकः**'' अर्थात् अनन्यवृत्ति से संयुक्त मन को ही सत्त्व की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है, और इसके द्वारा जिसको साध्य किया जाता है वह सात्त्विक कहलाता है। मंच पर जब अभिनेता विविध विचारों से ग्रसित होता है तब वह सात्त्विक भाव को प्रकट करने में समर्थ नहीं होता है और जब वह सभी वैचारिक अवस्था का परित्याग कर एकाग्र की अवस्था को प्राप्त करता है तब वह सात्त्विक भाव को प्रकट करने में समर्थ होता है। यदि इसे साधारण भाषा में कहा जाए तो इसे हम स्वभाव से ही विना परिश्रम के जो भाव स्वतः प्रकट हो जाते हैं उन्हें सात्त्विक भाव कहते हैं। उदाहरण के लिए डरे हुए व्यक्ति के रोंगटे खड़े हो जाना स्वभाविक है और भी अपने किसी परिवार में स्थित या कोई भी जिससे हमारा

दिल से नाता है उसकी मृत्यु हो जाए तो आंखों में आँसुओं का आ जाना स्वभाविक है इसके लिए कोई परिश्रम नहीं करना पड़ता है।

द्रष्टव्य है –

''इह हि सत्त्वं नाम मनः प्रभवम्। तच्च समाहितमनस्त्वादुच्यते। मनसः समाधौ सत्त्वनिष्पत्तिर्भवति। तस्य च योऽसौ स्वभावो रोमांचाश्रुवैवर्ण्यादिलक्षणो यथाभावोपगतः स न शक्योऽन्यमनसा कर्तुमिति लोकस्वभावानुकरणत्वाच्च नाट्यस्य सत्त्वमीप्सितम्।।''

(नाट्यशास्त्र, 6/93)

सत्त्व अर्थात् मनुष्य या मानव के अन्तःस्थ हृदय में नित्य सुषुप्तावस्था में रहने वाले तत्त्व जिनके माध्यम से या प्रकटीकरण से रसादि की प्रतीति होती है उनसे जिस प्रकार के विकार उत्पन्न होते हैं उनकों ही सात्त्विक भाव कहते हैं। यथा –

''विकाराः सत्त्वसम्भूताः सात्त्विकाः परिकीर्तिताः।।''

(साहित्यदर्पण, 3/134)

सात्त्विक भाव अनुभावों से पृथक माने जाते हैं। साहित्यदर्पण में आचार्य विश्वनाथ ने इस सन्दर्भ में गोबलीवर्दन्याय के माध्यम से बतलाया है। वह कहते हैं कि बलीवर्द का विश्व में प्रसिद्ध अर्थ बैल है। बलीवर्द शब्द से धेनु जो कि एक स्त्रीलिंग प्रधान है उससे तो भिन्न है परन्तु वृषभरूप गोत्व जाति से अभिन्न है। इसी प्रकार स्तम्भ आदि प्राप्त सात्त्विक भाव अनुभाव से पृथक् तो है परन्तु इनका जो स्वरूप है वह अपृथक् होता है। इस प्रकार दोनों में भेद और अभेद एक साथ प्राप्त होते हैं। सात्त्विक भाव के आठ प्रकार प्राप्त होते हैं। यथा – स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वभंग, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय।

स्तम्भ–

मनुष्य जब भाव विह्वल हो जाता है अर्थात् जब उसका मन हृदयस्थ भावों से संक्रान्त होता है उस समय उन उत्पन्न भावों के कारण जब कुछ क्षणों के लिए वह निश्चेष्ट हो जाता है तब इसी अवस्था का नाम स्तम्भ कहा जाता है। यथा –

''स्तम्भश्चेष्टाप्रतीघातो भयहर्षामयादिभिः।''

स्वेद–

स्वेद का हिन्दी अर्थ पसीना है जब भी कोई व्यक्ति अत्यधिक परिश्रम करता है या किसी कारण से भयभीत होता है तब उसके शरीर के रोम कूपों से जलस्वरूप एक विशेष प्रकार का द्रव्य बाहर निकलता है, उसी को स्वेद कहते हैं। यथा –

''वपुर्जलोद्गमः स्वेदो रतिघर्मश्रमादिभिः।।''

रोमांच–

जब भय, विस्मय और हर्ष आदि विकारों के कारण रोम केशों की स्थिति सामान्य स्थिति से भिन्न हो जाती है अर्थात् जिसे सामान्य बोली में रोंगटे खडा होना कहते हैं इस स्थिति को रोमांच कहते हैं। यथा –

''हर्षाद्भुतभयादिभ्यो रोमांचो रोमविक्रिया।।''

स्वरभंग–

जब हम अत्यधिक आनन्द या शोक की स्थिति में होते हैं तब हम उस भाव के आवेश के कारण कुछ भी कहने में असमर्थ अनुभव करते हैं उस समय हमारी वाणी अवरुद्ध हो जाती है वाणी की इस स्थिति को हम स्वर भंग कह सकते हैं। यथा –

''मदसम्मदपीडाद्यैर्वैस्वर्यं गद्गदं विदुः।।''

वेपथु–

किसी के द्वारा जब अत्यधिक परिश्रम किया जाता है उस स्थिति में या बहुत अधिक राग अर्थात् प्रेम की स्थिति या कोई अन्य भावुक करने वाली स्थिति में शरीर में कम्पन का विकार उत्पन्न होता है तो उसे वेपथु कहा जाता है। यथा –

''रागद्वेषश्रमादिभ्यः कम्पो गात्रस्य वेपथुः।।''

वैवर्ण्य–

जब मनुष्य किसी भाव के प्रवाह में आता है तब उसके द्वारा उच्चारित होने वाले शब्दों में जब विकार उत्पन्न होता है तो उसे ही वैवर्ण्य कहा जाता है। जैसे जब कोई व्यक्ति अत्यधिक शोक को प्राप्त करता है तब उसका हृदय भर आता है इस कारण से उसके द्वारा उस समय कुछ भी बोला जाना सम्भव नहीं होता है तब वह ऐसी स्थिति में कुछ बोलने का प्रयास करता है तो जिन शब्दों का प्रयोग वह करना चाहता है उन शब्दों का सटीक सटीक उच्चारण नहीं कर पाता है। यथा –

''विषादमदरोषाद्यैर्वर्णान्यत्वं विवर्णता।।''

अश्रु–

सभी जानते हैं कि अश्रु या आँसू नेत्रों से बाहर निकलने वाला जल है। जब कोई व्यक्ति किसी भी प्रकार से शोक, दुःख, चिन्ता, अवसाद, प्रेम या किसी भी प्रकार के भावों की प्रबलता को प्राप्त करता है तब उसके नेत्रों से जल बाहर आता है इसी को अश्रु कहते है।

''अश्रु नेत्रोद्भवं वारि क्रोधदुःखप्रहर्षजम्।।''

प्रलय–

जब मनुष्य अत्यधिक सुख या अत्यधिक दुःख की स्थिति को प्राप्त करता है तब वह चेष्टा अर्थात् करने की इच्छा और ज्ञान से शून्य की स्थिति को प्राप्त करता है और इसी स्थिति को प्रलय शब्द से अभिहित किया गया है। यथा –

''प्रलयः सुखदुःखाभ्यां चेष्टाज्ञाननिराकृतिः।।''

11.9 स्थायी भाव

जिनके सहयोग से रस की निष्पत्ति होती है वे विभाव, अनुभाव, संचारी भाव स्थायी भाव के ही आश्रयीभूत अंग है। इस सम्बन्ध में नाट्यशास्त्र एक युक्ति प्रस्तुत करता है कि जिस प्रकार सभी मनुष्यों में उनका राजा प्रधान होता है और सभी शिष्यों में गुरु

ही प्रधान होता है इसी तरह सभी भावों में स्थायी भाव ही श्रेष्ठ होता है तथा सभी में प्रधान होता है। यथा –

''यथा नराणां नृपतिः शिष्याणां च यथा गुरुः।
एवं हि सर्वभावानां भावः स्थायी महानिह।।''

(नाट्यशास्त्र, 7/8)

दशरूपककार ने स्थायी भाव को समुद्र के रूप में माना है वे कहते हैं कि जिस प्रकार नमक युक्त जल और मधुर द्रव्य युक्त जल यदि समुद्र में मिला दिये जाएं तो समुद्र उन दोनों जल को अपने में आत्मसात कर एकरूप बना लेता है वैसे ही यह स्थायी भाव सकल भावों के समूह को अपने में समाहित कर लेता है। इस प्रकार सहायक भाव तथा नष्ट करने वाले भाव के द्वारा जिस भाव को नष्ट नहीं किया जा सकता है उसे स्थायी भाव कहा जाता है। यथा –

''विरुद्धैरविरुद्धैर्वा भावैर्विच्छिद्यते न यः।
आत्मभावं नयत्यन्यान् स स्थायी लवणाकरः।।''

(दशरूपक, 4/34)

स्थायी भावों के आठ भेद प्राप्त होते हैं जो प्रत्येक रस से सम्बन्धित होते हैं वे इस प्रकार हैं – रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय । ये आठ भेद आचार्य भरत मुनि के द्वारा स्वीकार किये गये हैं। आचार्य मम्मट ने अपने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ काव्यप्रकाश में इनके अतिरिक्त एक नवम रस शान्त रस को भी स्वीकार किया है जिसका स्थायी भाव निर्वेद कहा है। इस प्रकार काव्य प्रकाश में नौ स्थायी भाव प्राप्त होते हैं। आचार्य विश्वनाथ नौवें स्थायी भाव के रूप में शम को मानते हैं। यथा –

''रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहो भयं तथा।
जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायिभावाः प्रकीर्त्तिताः।।''

(काव्यप्रकाश, 4/30)

और नौवां स्थायी भाव है– निर्वेद। द्रष्टव्य– ''निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति''।

11.10 सारांश

इस इकाई में हमने रस की परिभाषा, रस का स्वस्प, रस निष्पत्ति के उपादान, भाव, विभाव, अनुभाव, सात्त्विक भाव तथा स्थायी भावों को जाना है। जब कोई मनुष्य किसी भी प्रकार की अनुभूति प्राप्त करता है और उस अनुभूति के अनुसार उसके शरीर तथा व्यवहार में जो विकार दिखाई देते हैं वे विविध प्रकार के प्राप्त होते हैं। मानिये कि कोई व्यक्ति अपने प्राणों की रक्षा के लिए इधर – उधर भाग रहा है इससे लोक में जो उसे देखेगा वो उसे भयभीत कहेगा क्योंकि वह उससे डर रहा है और अपने प्राण बचाना चाहता है इसी को शास्त्र में भयानक रस कहेंगे और भय को उसका स्थायी रूप कहेगें। जब कोई व्यक्ति अपनी मृत्यु को सामने देख ले तो वह स्तब्ध हो जायेगा, उसकी वाणी अवरुद्ध हो जायेगी, उसके रोम तन्तु खड़े हो जायेगें इन संवेगों को सात्त्विक भाव कहते हैं। मनुष्य का जो मानसिक विकार है, वह भाव कहा जाता है। रस को पहचानने में कुछ कारणात्मक भाव होते हैं जैसे भयभीत व्यक्ति का भागना

और छिपना। उन्हें ही विभाव कहा जाता है। रस की अनुभूति के पश्चात् जो भाव उत्पन्न होते हैं उन्हे अनुभाव कहते हैं। इस प्रकार हमने इस इकाई में हमने रस तथा भावों का ज्ञान प्राप्त किया।

11.11 शब्दावली

रस – आस्वादन योग्य तत्त्व

भाव – सुखदुःखादि मानसिक विकार

विभाव – रस के निमार्ण में कारण

अनुभाव – रस आस्वादन के बाद का कार्य

सात्त्विकभाव – परिणाम स्वरूप भाव

स्थायी भाव – सभी रसों को व्यक्त करने वाले भाव

11.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, व्याख्याकार– बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, वि. सं. 2065
2. नाट्यशास्त्र, भरतमुनिकृत, सम्पादक मधुसूदन शास्त्री, काशी हिन्दु विश्वविद्यालय, वाराणसी।
3. दशरूपक, धनंजय, हिन्दी टीकाकार– डॉ. भोला शंकर व्यास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2000।

11.13 बोध प्रश्न

1. रस किसे कहते हैं? परिभाषित कीजिए।
2. रस उत्पत्ति के उपादान क्या हैं?
3. भाव को परिभाषित कीजिए?
4. विभाव किसे कहते हैं? समझाइए।
5. अनुभाव किसे कहते हैं? रसनिष्पत्ति में इनकी क्या भूमिका है?
6. सात्त्विक भाव किसे कहते हैं?
7. स्थायीभाव किसे कहते हैं?
8. भरतमुनि का रससूत्र लिखकर समझाइए।

इकाई 12 व्यभिचारी भाव तथा मानसिक स्तर के चार प्रकार

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 व्यभिचारी भाव की परिभाषा जानना।

12.2 व्यभिचारी भाव के भेदों को जानना।

12.3 मानसिक स्तर के प्रकारों को जानना।

12.4 मानसिक स्तर के चार प्रकारों के स्वरूप को जानना।

12.0 उद्देश्य

व्यभिचारी भाव तथा मानसिक स्तर के चार प्रकार केवर्णनों की प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप :

- व्यभिचारी भाव की परिभाषा जानेंगे।
- व्यभिचारी भाव के भेदों को बताएंगे।
- मानसिक स्तर के प्रकारों का वर्णन करेंगे।
- मानसिक स्तर के चार प्रकारों के स्वरूप को बतायेंगे।
- विकास, विस्तार, क्षोभ, विक्षेप का उल्लेख करेंगे।

12.1 प्रस्तावना

भरतमुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र में रसों के उत्पत्ति के तत्त्व विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी भावों को विस्तार पूर्वक लक्षण और उदाहरणों को बतलाया गया है। इसी क्रम में उन्होनें व्यभिचारी भावों का भी विस्तार से वर्णन किया है। उनके ग्रन्थ को अध्ययन करने के उपरान्त पता चलता है कि ऐसे तत्त्व या भाव जिनके साक्षात्कार करने से सामाजिक सहृदय के द्वारा उस रस तत्त्व का आस्वादन किया जा सके। इस प्रकार भी व्यभिचारी भाव को परिभाषित किया जा सकता है कि जिन भावों के कारण रस आस्वाद योग्य बनता है ऐसे भावों को व्यभिचारी भाव कहते है। इस इकाई के अन्तर्गत व्यभिचारी भाव की परिभाषा और उसके भेदों का अध्ययन के साथ मानसिक स्तर के चार भावों का अध्ययन भी अपेक्षित है।

12.2 व्यभिचारी भाव लक्षण तथा भेद

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र के सातवें अध्याय में व्यभिचारी भावों का वर्णन किया है। व्यभिचारी भावों को संचारी भाव भी कहा जाता है। ''वि'' तथा ''अभि'' उपसर्ग पूर्वक गत्यर्थक ''चर'' धातु से ''णिनि'' प्रत्यय के संयोग से यह शब्द निष्पन्न होता है। इसकी परिभाषा इस प्रकार प्राप्त होती है कि ऐसे भाव जिनके अभिमुखीकरण के द्वारा रस का आस्वादन किया जा सकता हो वे भाव व्यभिचारी भाव कहलाते हैं। ये व्यभिचारी भाव स्थायी भावों में इस प्रकार रहते हैं जिस प्रकार समुद्र में तरंगे रहती हैं

अर्थात् जिस प्रकार समुद्र में तरंगे उठती हैं और उसी में समाहित हो जाती हैं उसी प्रकार ये संचारी भाव स्थायी भावों में स्थित हाव–भाव के दृश्य के कारण हृदय में उठते हैं और फिर उन्हीं में समाहित हो जाते हैं। चरन्ति पद का तात्पर्य भरत मुनि में नयन्ति अर्थ लिया है जिसका अर्थ है 'ले जाते हैं' – ''चरन्ति नयन्तीत्यर्थः''। रस को सामाजिक के हृदय तक ले जाने वाले तत्त्व ही व्यभिचारी भाव हैं। यथा –

''विशेषादाभिमुख्येन चरन्तो व्यभिचारिणः।
स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्नाः कल्लोला इव वारिधौ।।''

(दशरूपक, 4/7)

इसी बात को साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ कुछ इस प्रकार कहते हैं। यथा –

''विशेषादाभिमुख्येन चरणाद् व्यभिचारिणः।
स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्नास्त्रयस्त्रिंशच्च तद्विदाः।।''

(साहित्यदर्पण, 3/140)

आचार्य भरत मुनि ने 33 व्यभिचारी भावों को कहा है। वे इस प्रकार हैं – निर्वेद, ग्लानि, शङ्का, श्रम, धृति, जडता, हर्ष, दैन्य, औग्र्य, चिन्ता, त्रास, ईर्ष्या, अमर्ष, गर्व, स्मृति, मरण, मद, सुप्त, निद्रा, विबोध, व्रीडा, अपस्मार, मोह, मति, अलसता, वेग, तर्क, अवहित्था, व्याधि, उन्माद, विषाद, उत्सुकता, चपलता। इन व्यभिचारी भावों की संख्या, नाम तथा परिभाषा के विषय में आचार्यों में मतभेद नहीं है। व्यभिचारी भावों का उल्लेख करते हुए धनंजय कहते हैं–

''निर्वेदग्लानिशङ्काश्रमधृतिजडताहर्षदैन्यौग्र्यचिन्ता–
स्त्रासेर्ष्यामर्षगर्वाः स्मृतिमरणमदाः सुप्तनिद्राविबोधाः।
व्रीडापस्मारमौनाः सुमतिरलसतावेगतर्कावहित्था
व्याध्युन्मादौ विषादोत्सुकचपलयुतास्त्रिशदेते त्रयश्च।।''

(दशरूपक, 4/8)

इन्ही व्यभिचारी भावों को काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट इस प्रकार कहते हैं। यथा –

''निर्वेदग्लानिशङ्काख्यास्तथाऽसूयामदश्रमाः।
आलस्यं चैव दैन्यं च चिन्ता मोहः स्मृतिर्धृतिः।।
व्रीडा चपलता हर्ष आवेगो जडता तथा।
गर्वो विषाद औत्सुक्यं निद्राऽपस्मार एव च।।
सुप्तं प्रबोधोऽमर्षश्चाप्यवहित्थमथोग्रता।
मतिर्व्याधिस्तथोन्मादस्तथा मरणमेव च।।
त्रासश्चैव वितर्कश्च विज्ञेया व्यभिचारिणः।
त्रयस्त्रिंशदमी भावाः समाख्यातास्तु नामतः।।''

(काव्यप्रकाश, 4/31–34)

इन्ही व्यभिचारी भावों को साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने इस प्रकार निरूपित किया है। यथा –

''निर्वेदावेगदैन्यश्रममदजडता औग्र्यमोहौ विबोधः।
स्वप्नापस्मारगर्वा मरणमलसतामर्षनिद्रावहित्थाः।
औत्सुक्योन्मादशङ्काः स्मृतिमतिसहिता व्याधिसन्त्रासलज्जा
हर्षासूयाविषादाः सधृतिचपलता ग्लानिचिन्तावितर्काः।।''

(साहित्यदर्पण, 3/142)

12.2 व्यभिचारी भाव के भेदों की परिभाषाएँ

व्यभिचारी भाव तैंतीस माने गये हैं। उनकी परिभाषाएं नाट्यशास्त्रीय संबंधी ग्रन्थों में प्राप्त होती हैं। उन्हें यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

1. निर्वेद

यह भाव शान्त रस के स्थायी भाव के रूप में जाना जाता है। नष्ट हाने वाले पदार्थ और नष्ट नहीं होने वाले पदार्थ के विवेक ज्ञान से यह प्रकट होता है। यहां यह संचारी भाव के अन्तर्गत प्राप्त होता है तब यह दारिद्र्य, अपमान, अमानवीय भाषा, आक्रोश, ताडना, इष्ट बन्धु बान्धवों के वियोग तथा तत्त्वज्ञान से उत्पन्न होता है। स्त्री पात्र, निम्न कोटि के पात्र और कुत्सित पात्रों के द्वारा इसका अभिनय किया जाताा है। इस भाव का प्रकटीकरण करुण क्रन्दन, हृदय के भर आने के कारण जोर – जोर से श्वसन आदि अन्य क्रिया के द्वारा होता है।

2. ग्लानि

वमन क्रिया, जुलाब होना, रोग होने की स्थिति, तप, नियम, उपवास, सन्तप्त मन, बहुत अधिक कामुक प्रवृत्ति, बहुत अधिक सुरा पान, बहुत अधिक व्यायाम के कारण, अधिक गत्यर्थक कर्म के कारण, भूख, पिपासा, निद्रा के विक्षेप होनी की स्थिति आदि भावों के द्वारा ग्लानि भाव की उत्पत्ति होती है। इस भाव के प्रदर्शन करने वाले शारीरिक विकार इस प्रकार हैं – मन्द्र स्वर से बोलने की क्रिया, नेत्रों का तेज हीन होना, मन्द्र गति से चलने की क्रिया, गालों का पीलापन होना, साहस पूर्वक अशिष्टता, देह का स्थूलता से विपरीत होना, आनन का लज्जा युक्त होना और शरीर के कम्पन्न आदि।

3. शङ्का

चौर्य कर्म के द्वारा धन को प्राप्त करने, राजा का कोई अपराध करने और पाप कर्म करने आदि के द्वारा यह भाव उत्पन्न होता है। इस भाव का अभिनय नट आदि के द्वारा किसी को बार बार देखने से, सकुचानें की क्रिया से, बार बार मुख के सूखने से, दोनों अधरों को जिह्वा की लेह क्रिया से, मुख वैवर्ण्य, कांपना, स्वर परिवर्तन, अधरों का शुष्क होना, भावुक कण्ठ के द्वारा प्रयत्न करने पर भी बोलने की क्रिया न होने पर आदि कारणों के द्वारा किया जाता है।

4. श्रम

अधिक समय तक यात्रा, अधिक व्यायाम आदि के करने पर श्रम नामक व्यभिचारी भाव उत्पन्न होता है।

5. धृति

शौर्य, विज्ञान, विद्या, वैभव, शौचाचार, गुरुभक्ति, अत्यधिक मन के अनुसार धन का लाभ, खेलने आदि विभावों के माध्यम से धृति की उत्पत्ति होती है।

6. जडता

जब कोई मनुष्य किसी भी कार्य को सम्पन्न करने में प्रवृत्त नहीं हो पाता है तो उस मनुष्य की इस प्रकार की स्थिति ही जडता कहलाती है। इष्ट तथा अनिष्ट पदार्थ के देखने से, सुनने से तथा किसी भी प्रकार की व्याधि से ग्रसित हो जाने पर जडता उत्पन्न होती है।

7. हर्ष

सकल मनोरथों की सिद्धि होने पर, इष्ट या प्रेमी के साथ मिलन होने पर, मन में उत्पन्न इच्छाओं की प्राप्ति पर, देवता, गुरु और राजा आदि श्रेष्ठ जनों का कृपा प्रसाद मिलने पर, विविध प्रकार की सम्पत्तियों की प्राप्ति पर यह हर्ष नामक भाव प्रकट होता है।

8. दैन्य

किसी कारण से हुई दुर्गति, मन के सन्ताप के कारण दैन्य भाव की उत्पत्ति होती है।

9. औग्र्य

चौर्य कर्म करने पर सैनिकों के द्वारा पकडे जाने पर, किसी भी प्रकार से राजा के अपराधी होने पर, झूठ बोलने के कारण तथा अनर्गल प्रलाप करने के कारण से यह उत्पन्न होता है।

10. चिन्ता

ऐश्वर्य के नाश होने पर, इष्ट वस्तु से वियोग होने पर, धनादि के नष्ट होन पर प्राप्त दरिद्रता आदि कारणों से चिन्ता नामक भाव उत्पन्न होता है।

11. त्रास

गगन स्थित विद्युत का भूमि पर गिरने से, किसी उल्का पिण्ड का भूमि पर गिरने से, इन्द्रायुध वज्र के पतन से, भूकम्प के आने से, मेघ से उत्पन्न अतितीव्र ध्वनि से, सिंह आदि हिंसक जानवरों के शब्दों के श्रवण से त्रास नामक भाव उत्पन्न होता है।

12. ईर्ष्या

किसी अन्य मनुष्य के सौभाग्य, धन सम्पदा, बुद्धि की प्रबलता, विद्या उपार्जन आदि के प्रदर्शन को देखकर मनुष्य के हृदय में असूया उत्पन्न होती है।

13. अमर्ष

अपने से अधिक विद्यावानों से, ऐश्वर्य सम्पन्न व्यक्तियों से तथा अपने से अधिक शक्तिसम्पन्नों से अपमान को प्राप्त हुए व्यक्तियों में अमर्ष भाव उत्पन्न होता है।

14. गर्व

अपने ऐश्वर्य के कारण, स्वयं की कुलीनता के कारण, सुन्दर रूप लावण्य के कारण, युवावस्था के कारण, शोभनीय विद्या और उपयुक्त बल के कारण मनुष्य के हृदय में गर्व नामक भाव प्रकट होता है।

15. स्मृति

सुख और दुःख से युक्त घटित घटनाओं या बीते क्षण को स्मरण करना ही स्मृति है।

16. मरण

मरण का बहुत अधिक विस्तार भरत मुनि के द्वारा किया गया है। मरण किसी भी कारण से उत्पन्न हो सकता है। मरण के दो प्रकार इनके द्वारा बताए गए हैं प्रथम है रोगजन्य मरण, द्वितीय है अशुभघटना से उत्पन्न मरण। यथा – अचानक घटित किसी दुर्घटना में हुए मरण को अशुभ घटना जन्य मरण कहा जाता है। किसी रोग के कारण हुए मरण को रोग जन्य मरण कहा जाता है।

17. मद

सुरा या मदिरा के पान से मद नामक भाव उत्पन्न होता है। वह तीन प्रकार का होता है – तरुण, मध्य और अवकृष्ट।

18. सुप्त

निद्रा के कारण से उत्पन्न भाव सुप्त भाव है। इस स्थिति में शरीर की सभी इन्द्रियां अपने अपने विषयों के भोग करने से विरत हो जाती हैं। इसमें इन्द्रियों का सम्मोहन, भूमि पर लेट जाना, सिकुडने, फैलने आदि से 'सुप्त' भाव उत्पन्न होता है। इसका अभिनय करने के लिए शरीर चेष्टाओं से रहित, आँखें बन्द, सभी इन्द्रियाँ अपने विषयों में प्रवृत्ति से रहित आदि किये जाते हैं।

19. निद्रा

शारीरिक दौर्बल्य, अधिक श्रम, किसी कारण आए हुए मद, प्राप्त आलस्य, की गयी चिन्ता, मात्रा से अधिक आहार आदि विभावों के कारण निद्रा उत्पन्न होती है।

20. विबोध

निद्रा से रहित भाव ही विबोध है। नींद से जागने पर, किये गये आहार के पाचन क्रिया होने पर, निद्रा में अशुभ स्वप्न के देखने पर, उच्च स्वर से आवाज निकालने पर, किसी के स्पर्श करने पर तथा किसी विशेष प्रकार की ध्वनि के श्रवण करने पर विबोध नामक भाव उत्पन्न होता है।

21. व्रीडा

गुरु आदि श्रेष्ठ जनों की आज्ञा के उल्लंघन से, ली गई प्रतिज्ञा को पूर्ण नहीं कर पाने से, अपमान तथा नहीं करने योग्य कर्म के करने पर बाद में पश्चात्ताप करने से व्रीडा नामक भाव प्रकट होता है।

22. अपस्मार

देव, यक्ष, नाग, ब्रह्मराक्षस, भूत, प्रेत तथा पिशाच आदि के दर्शन से, स्मरण से, उच्छिष्ट भोजन के करने से, जहां कोई नहीं रहता हो ऐसे भवन में शयन करने

से, अपवि़त्र तथा ऊँचे नीचे अर्थात् उबड़ खाबड़ स्थान पर चलने से, शरीर में स्थित सप्त धातुओं के सन्तुलन के बिगड़ने से अपस्मार नामक भाव उत्पन्न होता है।

23. मोह

अचानक किसी घटित घटना के कारण शरीर में किसी भी प्रकार से आघात होने पर, दुःख की स्थिति में, व्याधि भय के कारण, प्रबल शत्रु के स्मरण हो आने पर आदि कारणों से मोह की उत्पत्ति होती है।

24. मति

विविध प्रकार के शास्त्रों के चिन्तन–मनन करने से, भिन्न – भिन्न विषयों में ऊहापोह करने से यह भाव उत्पन्न होता है।

25. अलसता

परिश्रम के कारण आई थकावट, किसी रोग के कारण शरीर की निर्बलता, गर्भावस्था, श्रम आदि के द्वारा आलस्य उत्पन्न होता है।

26. आवेग

उत्पात अर्थात् देश में संकट की स्थिति उत्पन्न होने पर, अधिक वर्षा के होने पर, अग्नि भय से, हाथी या किसी प्रकार से उत्पन्न उत्पात से, अच्छा लगने वाला और अच्छा नहीं लगने वाला इतिवृत्त के श्रवण से, संकट तथा किसी भी प्रकार के आक्रमण के कारण आवेग नामक भाव उत्पन्न होता है।

27. वितर्क

जब किसी भी प्रकार का सन्देह होता है, किसी विषय का विमर्श होता है इस प्रकार ऊहापोह की स्थिति ही वितर्क कहलाती है।

28. अवहित्थ

विविध प्रकार के भावों का आच्छादन अर्थात् उनके प्रकट होने की दशा में अन्य मानसिक वृत्ति का आश्रय गृहण करना ही अवहित्थ कहलाता है। यह अवहित्थ प्राप्त लज्जा, उत्पन्न भय, पराजय की स्थिति, गौरव, छल या कुटिलत्त्व के कारण उत्पन्न होता है।

29. व्याधि

शरीर में स्थित वात अर्थात् वायु, पित्त अर्थात् भोजन पचाने में उपयुक्त तरल द्रव्य और कफ अर्थात् शीतगुण युक्त पदार्थों के सेवन से उत्पन्न श्वेत या मटमैला पदार्थ जब इन तीनों का शरीर में सन्तुलन अस्थिर हो जाता है तब यह भाव उत्पन्न होता है। ज्वर आदि भेद होने से व्याधि के अनेक प्रकार होते हैं।

30. उन्माद

जो प्रिय जन है उनका जब वियोग हाता है तब, परिश्रम से प्राप्त की गई सम्पत्ति का जब नाश होता है तब, दुःखात्मक आघात होता है तब, वात–पित्त–श्लेष जब कुपित होता है तब उन्माद नामक भाव उत्पन्न होता है।

31. विषाद

पूर्व में संकल्पित किये जाने वाले कार्य के सम्पन्न नहीं होने पर तथा देव विशेष की अनुकूलता के नहीं रहने पर विषाद नामक भाव उत्पन्न होता है।

32. उत्सुकता

जब इष्ट जन का वियोग हाता है और उन के विषय में स्मरण होता है इसके कारण उन प्रिय जनों से मिलन के निमित्त उत्पन्न भाव से तथा उद्यान, देव दर्शन आदि के कारण जो भाव प्रकट होता है वह उत्सुकता कहलाता है।

33. चपलता

किसी व्यक्ति प्रति राग, द्वेष, मात्सर्य, ईर्ष्या की स्थिति तथा प्रतिकूल परिस्थिति होने पर चपलता नामक भाव की उत्पत्ति होती है।

12.3 मानसिक स्तर के चार प्रकार : विकास, विस्तार, क्षोभ, विक्षेप

काव्य के पठन – पाठन या नाटककादि के दृश्य – श्रवण के माध्यम से देखने – सुनने वाले सामाजिक के हृदय में जो रस उत्पन्न होता है उसका जो आस्वादन होता है उस आस्वादन के कारण जिस आनन्द का प्रादुर्भाव होता है उसे ही स्वाद कहा जाता है। इसको हम इस प्रकार से समझ सकते हैं – कोई व्यक्ति अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक देख रहा है उस नाटक के अन्तर्गत दुष्यन्त और शकुन्तला के मिलन का अभिनय प्रस्तुत होता है इसमें नायक और नायिका के जो हाव – भाव हैं उनसे सामाजिक दर्शक को श्रृंगार रस की अनुभूति हो रही है इसी क्रम में उसके हृदय में जो विशेष प्रकार का आनन्द उत्पन्न हो रहा है इसी का नाम ही स्वाद है। यह स्वाद चार प्रकार से अभिहित होता है विकास, विस्तार, क्षोभ, विक्षेप। यथा –

स्वादः काव्यार्थसम्भेदादात्मानन्दसमुद्भवः।
विकासविस्तरक्षोभविक्षेपैः स चतुर्विधः।।
(दशरूपक, 4/43)

दशरूपककार का मानना है कि जो चार प्रकार के स्वाद हैं वे नित्य श्रृंगार, वीर, बीभत्स और रौद्र रस में स्थित होते हैं। नाट्यशास्त्रीय रसोत्पत्ति के अनुसार मुख्य चार रसों से ही अन्य चार रसों की सृष्टि होती है इसी सन्दर्भ को यहां प्रस्तुत करते हुए इसी कारिका में आगे इन्होंने हास्य, अद्भुत, भय तथा करुण रस में भी इन चारों स्वादों की स्थिति को दर्शाया है। इस प्रकार क्रम से इन की स्थिति का ज्ञान इस प्रकार होता है कि श्रृंगार तथा हास्य रस में विकास नामक स्वाद रहता है, भय और अद्भुत रस के आश्रय में विस्तार नामक स्वाद रहता है, बीभत्स और भय रस के द्वारा क्षोभ का प्रादुर्भाव होता है, रौद्र तथा करुण रस में विक्षेप नामक स्वाद की स्थिति होती है। इस प्रकार इन आठ रसों में ही इन चार स्वादों की स्थिति का ज्ञान हमें प्राप्त होता है। यथा –

शृङ्गारवीरबीभत्सरौद्रेषु मनसः क्रमात्।
हास्याद्भुतभयोत्कर्षकरुणानां त एव हि।।
अतस्तज्जन्यता तेषामत एवावधारणम्।
(दशरूपक, 4/44,45)

12.4 सारांश

रस के आस्वादन में सहायक तत्त्व व्यभिचारी भाव हैं। ये व्यभिचारी भाव जल में निर्मित तरंगों के समान होते हैं। जो उसी में उत्पन्न होते हैं और उसी में समाहित हो जाते हैं। ये व्यभिचारी भाव संख्या में 33 कहे गये हैं। वे व्यभिचारी भाव हैं – निर्वेद, ग्लानि, शङ्का, श्रम, धृति, जडता, हर्ष, दैन्य, औग्र्य, चिन्ता, त्रास, ईर्ष्या, अमर्ष, गर्व, स्मृति, मरण, मद, सुप्त, निद्रा, विबोध, व्रीडा, अपस्मार, मोह, मति, आलस्य, आवेग, तर्क, अवहित्था, व्याधि, उन्माद, विषाद, उत्सुकता, चपलता। भरत मुनि आदि शास्त्रकारों ने इन्हीं भावों को क्रम से नहीं कहा है, उनके क्रम में भेद प्राप्त होता है। मानसिक स्तर के चार प्रकार हैं। रसास्वादन के अन्तराल में जो आनन्द उत्पन्न होता है वह मानसिक स्तर या स्वाद नाम से कहा गया है। वह स्वाद चार प्रकार से होता है – विकास, विस्तार, क्षोभ और विक्षेप।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप व्यभिचारी भाव के स्वरूप तथा भेदों का विवेचन कर सकते हैं। साथ ही मानसिक स्तर के चार प्रकारों – विकास, विस्तार, क्षोभ और विक्षेप को भी समझा सकते हैं।

12.5 शब्दावली

व्यभिचारी भाव – रसों में अनेक रूप से विचरने वाले तत्त्व।

भाव – काव्य में वर्णित नायक आदि के सुख दुःख आदि से सहृदय सामाजिक का तादात्म्य (एकतानता) हो जाना।

12.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. नाट्यशास्त्र, भरतमुनिकृत, व्याख्याकार बाबू शुक्ल शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, वि. सं. 2065
2. नाट्यशास्त्र, भरतमुनिकृत, सम्पादक मधुसूदन शास्त्री, काशी हिन्दु विश्वविद्यालय, वाराणसी।
3. दशरूपक, धनंजयकृत, हिन्दी टीकाकार डॉ. भोला शंकर व्यास, प्रकाशन चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
4. साहित्यदर्पण, विश्वनाथ कविराज प्रणीत, हिन्दी व्याख्याकार, आचार्य लोकमणिदाहाल, डॉ. त्रिलोकीनाथद्विवेदी, आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2013।
5. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट प्रणीत, हिन्दी व्याख्यायकार आचार्य विश्वेश्वर, सम्पादक डॉ. नरेन्द्र, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 2015

12.7 बोध प्रश्न

1. भाव किसे कहते हैं?
2. व्यभिचारी भाव किसे कहते हैं?
3. व्यभिचारी भाव के कितने भेद होते हैं?

4. व्यभिचारी भावों के नाम लिखिए।
5. मानसिक स्तर के कितने प्रकार होते हैं? उनके नाम लिखिए।
6. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए– विकास, विस्तार, क्षोभ और विक्षेप।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY